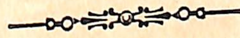
پورشہ شکھت

श्रीः ।

पुरुषसूक्तम्

उत्तरनारायणानुवाकसमेतम् ।



मुरादाबादनिवासिपण्डितश्रीज्वालाप्रसादमिश्रविर-
चितेन मिश्रभाषाभाष्येण समलंकृतम् ।



तच्च

श्रीकृष्णदासात्मजक्षेमराजेन

मुम्बय्यां

स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) यन्त्रागारे

मुद्रयित्वा प्रसिद्धिं नीतम् ।

संवत् १९५८, शके १८२३.

पुरुषसूक्तकी भूमिका.

ऋगादि चारों वेदोंमें परब्रह्मकी स्तुतिरूप "पुरुषसूक्त" पाया जाता है, और इसमें अनेक गूढ विषय होनेके कारण यह एक मुख्य वस्तु मानी जाती है, और इसका इतना प्रचार है कि, थोड़ा पढ़ाहुआ भी ब्राह्मण पुरुषसूक्त से अवश्य अवगत होता है, परन्तु विना अर्थबोधके केवल पाठमात्रसे उतना फल नहीं होता जैसा कि, सार्थज्ञान से होता है. इस कारण हमने इसका भाषामें भाष्यकरके महात्माओंके सन्मुख उपस्थित किया है, जिसके देखने से यह बात भलीभाँति विदित होजायगी कि, वेदका वेदत्व क्या है, वेदोंकी नित्यता, वेदार्थका प्रयोजन, ईश्वर का ध्यान, समस्त ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति, अध्यात्मयज्ञ, ऋषि देवता मनुष्यादिके भेद और सामर्थ्य, प्रजापतिका सर्वज्ञत्व, ब्राह्मणादिवर्णोंकी उत्पत्ति, तीर्थविचार, धर्मतत्त्वआदि अनेक गूढ विषय इसमें निरूपण किये गये हैं, जो पाठ करनेसे भली भाँति विदित होसकेंगे.

यहभी विदित रहै कि, यह 'पुरुषसूक्त' यजुर्वेदान्तर्गत है, और शेष संहिताओंमें कहीं कहीं शब्दमात्रका भेद है ऋकका भेद तो हमने दिखलाया भी है इसको अर्थसहित स्मरण करके सज्जनोंको दोनों लोकका लाभ उठाना चाहिये जो वेद ईश्वरीयज्ञान होनेसे हम वर्ण आश्रम धर्मवालोंके परम आदरकी वस्तु है. एकबार उसको देखना भी तो उचित है कि, हमारे निमित्त उसमें क्या उपदेश किया है ।

यहभी स्मरण रहै कि, इसीप्रकारसे हमने समस्त यजुर्वेदका भाषामें प्रमाण सहित भाष्य लिखा है, और उसीमें से यह पुरुषसूक्त पृथक् करके सर्व साधारण के सुभीतेके निमित्त प्रकाशित किया है, इसको देखनेसे आपको यह विदित होगा कि, समस्त वेद कैसी प्रयोजनीय गूढ दिव्यविद्याओंसे भरा हुआ है और यही ग्रन्थ हमारे निर्मित वेदभाष्यका आदर्श (नमूना) जानना चाहिये ।

सबप्रकार इसका सत्त्व जगद्विख्यात सर्वगुणसम्पन्न सेठजी श्रीयुत खेमराज श्रीकृष्णदासजी "श्रीवेङ्कटेश्वर" यंत्रालयाध्यक्षको समर्पित है कि,जो इस समय बड़ी दृढता से सनातन धर्मके ग्रंथोंका प्रचार कररहे हैं ।

पाठक महाशयोंको इसके देखनेसे अवश्य लाभ होगा यह मुझे दृढ आशा है कारण कि, अबतक भाषामें ऐसे गूढार्थ नहीं दिखायेगये हैं जो इस ग्रन्थके देखनेसे आपको विदित होंगे ।

सज्जनोंका अनुगृहीत–

२९ । २ । १९०२ ज्वालाप्रसाद मिश्र,
दीनदारपुरा–मुरादाबाद.

श्रीः ।

अथ पुरुषसूक्तम् ।

भाषाभाष्यसमेतं प्रारभ्यते ।

श्रीगणेशाय नमः ।

सहस्रशीर्षाषोडशाद्यःसंभृतःषट्द्वौद्वाविᳬशतिः ॥

कण्डिका १-मंत्र १ अनु० १.

हरिः ॐ सहस्रंशीर्षापुरुषः सहस्राक्षः सहस्रंपात् ॥
सभूमिᳬ सर्वतंस्पृत्वात्त्यंतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥ १ ॥

ऋष्यादि--(१) ॐसहस्रशीर्षेत्यस्य नारायणऋषिः । निच्यृदार्ष्य-नुष्टुप्छन्दः । पुरुषो देवता । स्तुतिकरणे विनियोगः ॥ १ ॥

विधिः-(१) यह सोलह मंत्र पाठ करकै पूर्व अध्यायके अन्तमें कही विधिके अनुसार परमात्माकी स्तुति करै, अर्थात् ब्रह्मा होतृवत् स्तुति करै [का० २१ । १ । ११] वनगमन वा घर रहनेकी इच्छा हो तौ पूर्व लिखे अनुसार करै [का० २१ । १ । १७-१८] ।

मंत्रार्थः-अव्यक्त महदादिसे विलक्षण चेतन (पुरुषः) परमात्मा "पुरुषान्न परं किंचित्" इति श्रुतेः । श्रुतियोंमें प्रसिद्ध सब प्राणियोंकी समष्टिरूप ब्रह्माण्डरूप देहयुक्त विराट्है वही (सहस्रशीर्षा) अन्तन शिरोंसे युक्त है जितने सब प्राणियोंके शिर हैं वे सब उसके शिरके अन्तरवर्ती होनेसे वह अनन्तशिरःसम्पन्न है (सहस्राक्षः) सहस्रों नेत्रयुक्त अर्थात् सब ज्ञानेन्द्रिय-सम्पन्न (सहस्रपात्) सहस्रों चरणों युक्त अर्थात् कर्मेन्द्रियसम्पन्न होनेसे यह सहस्रपात् है (सः) वह पुरुष (भूमिम्) ब्रह्माण्डगोलकरूप भूमिको वा पंचभूतोंको (सर्वतः) तिर्यक् ऊर्ध्व नीचे सब ओरसे (स्पृत्वा) व्याप्त करकै (दशाङ्गुलम्) दश अंगुल-परिमित देशको (अति) अतिक्रमण करकै (अतिष्ठत्) स्थित हुआ है दशाङ्गुल ब्रह्माण्डका उपलक्षण है अर्थात् ब्रह्माण्डसे बाहर भी सबओर व्याप्त होकर स्थित है, अथवा नाभिके स्थानसे दश अंगुल अतिक्रमण करकै हृदयमें स्थित है "सोयं

विज्ञानमयः प्राणेषु हृद्यन्तरज्योतिः" इति श्रुतेः। विज्ञानात्मा हृदयमें कर्मफल भुगानेके निमित्त अवस्थान करता है "द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति" [ऋ०] इन लोकोंमें पूर्ण करने और शयन करनेसे वह पुरुष है "इमे वै लोकाः पूरयमेव पुरुषो योयं पवते सोऽस्यां पुरि शेते तस्मात् पुरुषः" इति श्रुतेः [१३ । ६ । २ । १] ॥ १ ॥

विवरण--'ब्रह्मणे ब्राह्मणम्' यहांसे प्रारंभकर ३० वें अध्यायमें पुरुषमेधरूप परमात्माके अवयव कहे, अब उसकी अवयवीरूपसे स्तुति करते हैं यह ब्राह्मणादि समस्तही इस पुरुषसे शून्य नहीं है, इस कारण सबही उससे व्याप्त हैं, और वह सबको धारण किये हैं, और इसी कारण इस पुरुष देवताके प्रसादसे अतिशय रूप कामना सिद्ध होती है, पुरुष देवता १८४ पुरुष जातीयमें यजमानको भूलोकमें प्रतिष्ठित करैं और सब प्राणियोंके मध्यमें पुरुषजातिकी श्रेष्ठता इस मंत्रमें सम्पादन की है ॥ १ ॥

भाष्यविस्तार।

चैतन्य दो प्रकारका है व्यष्टि और समष्टि व्यष्टिचैतन्य समष्टि चैतन्यका अंशमात्र है। सृष्टिके जीवगण हम सब व्यष्टि चैतन्य हैं हमारे विधातृपुरुष विराट्को समष्टिचैतन्य कहा जाता है हमारा अतीत अनागत भेद असंख्य है हमारे मस्तकादि अवयव भी असंख्य हैं हमको समष्टि करकैही यह विराट् होता है इस कारण असंख्य शिर नेत्र चरणादियुक्त पुरुषको वर्णन किया, पूर्वादि दश दिशा विधाताके दश अंगुलसदृश हैं, क्योंकि लोकमें अंगुलीद्वाराही शून्यके उपरकी दिशाकी कल्पना कर रक्खा है, वास्तवम सब शून्य है, इस कारण अंगुलीनिर्दिष्ट दशदिक्पदार्थ एक अपेक्षा बुद्धिकी कल्पनामात्र है, ऐसी कल्पनावाला दशाङ्गुल कहाता है इस अर्थसे मूल अज्ञान वा माया दशाङ्गुलशब्दसे कही है विराट् आत्मा इस मायाको अतिक्रमपूर्वक अर्थात् जीवकी समान आधीन न होकर मायाकोही अपने आधीनकर मायी वा महेश्वर हुए हैं, सायनाचार्य दशाङ्गुलको उपलक्षण करकै समस्त ब्रह्माण्डका अर्थ करते हैं अर्थात् वह ब्रह्माण्डके बाहरभी है अथवा दशाङ्गुलसे परिमाणका अर्थ है, सब परिमाण दश अङ्गुलीसे कल्पित होता है, अर्थ यह कि परिमितस्थान ब्रह्माण्डको अतिक्रम करकै अवस्थान करते हैं, सर्वतोभावसे ब्रह्माण्डगोलकमें व्याप्त करकै उसके बाहरभी व्याप्त है, अथवा जिसके दश अङ्गुली हैं उसको व्याप्त करकै स्थित है, दशाङ्गुलशब्दसे हाथ पैरका अर्थ है अर्थात् विधाता हमारे हाथ और चरणकेभी बाहर व्याप्त है, आशय यह कि उसके बाहर भी व्याप्त होनेसे अर्चन और सुक्षेत्रगमनरूप क्रियासेभी उसको धारण

करनेको असमर्थ हैं, अथवा वह परिमाणको अतिक्रमण करके स्थित है, जितना ब्रह्माण्ड है यही उसका शरीर है, केवल ऐसाही नहीं किन्तु ब्रह्माण्डमें व्याप्त होकर ब्रह्माण्डके परिमाणको अतिक्रमण करके ब्रह्माण्डके बाहर भी व्याप्त है॥ १॥

विशेष-[ऋ० ८ । ४ । १७] में 'सर्वतः स्पृत्वा' के स्थानमें 'विश्वतो वृत्वा' पाठ है ॥ १ ॥

कण्डिका २-मंत्र १.

पुरु॑षऽए॒वेदꣳ सर्वं॒ऽयद्भू॒तं॒ऽयच्च॒ भाव्य॑म् ॥ उ॒ताम॑तत्त्व॒स्येशा॑नो॒यदन्ने॑नाति॒रोह॑ति ॥ २ ॥

ऋष्यादि-(१) ॐपुरुषइत्यस्य ना० ऋ०। निच्यृदार्षीजगतीछन्दः । पुरुषो देवता । वि० पू० ॥ २ ॥

मन्त्रार्थः-(इदं) जो यह वर्तमान जगत् है (यत्) जो (भूतम्) अतीत जगत् (च) और (यत्) जो (भाव्यम्) भविष्य जगत् है वह (सर्वम्) सम्पूर्ण ही (पुरुषः) पुरुष (एव) ही है अर्थात् जैसे इस कल्पमें वर्तमान प्राणियोंके देह विराट्पुरुषके अवयव हैं वैसेही अतीत और आनेवाले कल्पोंकेभी जानो (उत) और (यत्) जो कि (अन्नेन) प्राणियोंके भाग्यसे वा अन्नरूप फलके निमित्तसे (अतिरोहति) अपनी कारणअवस्थाको अतिक्रमण करके जगत्की अवस्थाको प्राप्त होता है [अथवा अन्नके निमित्त जो सम्पूर्ण अतिरोहण जन्म मृत्यु होती है उस सम्बन्धमें अमृतत्व देनेमें ईश्वरही है]अर्थात् प्राणियोंके कर्म फल भुगानेको जगत्की अवस्था स्वीकार करता है यदि कहो कि जो सब पुरुष है तो परिणामीभी होसकता है इस पर कहते हैं (अमृतत्वस्य) मरणधर्मरहित मुक्तिका (ईशानः) अधिपति अर्थात् सम्पूर्ण जीवोंका जो कि ब्रह्मासे स्तम्बपर्यन्त हैं उनका अधिपति (पुरुषः) पुरुष (एव) ही है अर्थात् यही प्राणीगणको देवता करते हैं जिसकारणकी प्राणीगणके भोगके निमित्त अपनी कारणअवस्था परित्यागपूर्वक कार्यावस्था अर्थात् जगतको स्वीकार करतेहैं ॥ २ ॥

विशेष-भगवान् यदि स्वयं इसप्रकाश अचिन्त्यशक्तिद्वारा जगत् अवस्थाको प्राप्त न हों तो यह जगत् किसीके सम्बन्धमें स्वर्ग और किसीके सम्बन्धमें नरकरूप होजाय तो एकही वस्तुके लिये स्वर्गनरकत्वरूप विरुद्ध धर्मका प्रकाश असंभव है अनीश्वरवादी कहेंगे प्रकृतिका स्वभाव है परन्तु आस्तिकगण कहेंगे "जिसको नास्तिक प्रकृतिका स्वभाव कहते हैं उसीको हम ईश्वरकी अचिन्त्यशक्ति कहते हैं" [ऋ० ८।४।१७] ॥ २ ॥

कण्डिका ३-मंत्र १.

एतावा॑नस्यमहि॒माऽतो॒ज्ज्याया॑ँश्च॒पूरु॑षः ॥ पादो॑स्य॒ विश्वा॑भू॒तानि॑त्रि॒पाद॑स्या॒मृतं॑दि॒वि ॥ ३ ॥

ऋष्यादि-(१) ॐएतावानित्यस्य ना०ऋ० । निच्यृदार्ष्यनुष्टुप्छं० । पुरुषो देवता । वि० पू० ॥ ३ ॥

मंत्रार्थः-अतीत अनागत वर्तमान कालसे सम्बद्ध जितना जगत् है (एतावान्) यह सब (अस्य) इस पुरुषकी (महिमा) सामर्थ्यविशेष विभूति है, वास्तविक स्वरूप नहीं है (च) और (पुरुषः) पुरुष तौ (अतः) इस महिमावाले जगतसे (ज्यायान्) अतिशय अधिक है (विश्वा) सम्पूर्ण (भूतानि) तीन कालमें वर्तनेवाले प्राणीसमूह (अस्य) इस पुरुषका (पादः) चतुर्थांश है (अस्य) इस परमात्माका अवशिष्ट (त्रिपात्) त्रिपात्स्वरूप (अमृतं) विनाशरहित (दिवि) प्रकाशात्मक अपने स्वरूपमें स्थित है यद्यपि "सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म" [तैत्तिरी०] इस वचनसे ब्रह्मकी इयत्ता कोई निरूपण नहीं करसकता तौभी उसकी अपेक्षा यह जगत् अतिअल्प है इस कारण पादरूपसे निरूपण कियाहै ॥ ३ ॥

भाष्यविस्तार-सगुण और निर्गुण इसप्रकार ब्रह्म दो प्रकारका है, यह चार पादयुक्त है उसमें एक पादमें सगुण ब्रह्म अर्थात् जगत्अवस्थाको प्राप्त ब्रह्मा वा विराट् पुरुष,अवशिष्ट तीन पादमें निर्गुण ब्रह्मका लक्ष्य किया है,निर्गुण ब्रह्मभी कूटस्थ और कारणशरीरनामसे दोप्रकारका है, जिसका शरीर कार्यात्मक और कारणात्मक नहीं जो अयोघनकी तुल्य निर्विकार है उसको कूटस्थ कहते-हैं,और जो कार्य जगत्के अभिन्न निमित्तोपादान कारणस्वरूप अर्थात् घटका उपादान कारण मृत्तिका,और निमित्त कारण कुंभकार यह दो कारण भिन्न २ हैं इसप्रकारका जो नहीं किन्तु जो जगद्रूपकार्यके मृत्तिकास्थानीय उपादान कारण भी होता है और कुंभकारस्थानीय निमित्तकारण भी होता है उसको अभिन्ननिमित्तोपादान कारण कहतेहैं,इस प्रकार कारणशरीरी ब्रह्मको श्रुतियोंने निर्गुण ब्रह्म कहा है यथा "एको देवः सर्वभूतेषु गूढः १ सर्वव्यापी २ सर्वभूतान्तरात्मा ३। सर्वाध्यक्षः ४ सर्वभूताधिवासः ५ साक्षी ६ चेता ७ केवलो ८ निर्गुणश्च ९" [श्वेताश्वतरउ०] इस श्रुतिमें १, २, ३, ५, विशेषण उपादानकारणता प्रगट करते हैं चौथा विशेषण निमित्तकारणता, छठे सातवें आठवें नौमें विशेषणद्वारा अभिन्न निमित्तोपादानस्वरूप अर्थात् कारणशरीरी ब्रह्मको निर्गुणत्व कहते हैं. यह अवस्था कूट-

स्थवत् निर्विकार निर्लिप्त नहीं, पूर्वोक्त अवशिष्ट अमृततत्वस्वरूप पादत्रय इस कारण-शरीरी ब्रह्ममें वर्तमान जान्ने मायाके तीन गुण सत्व, रज, तम, वा सुख, दुःख, मोह वा श्वेत, रक्त, कृष्ण, वा प्रकाश, प्रवृत्ति, निवृत्ति, वा उत्पत्ति, स्थिति, लय, वा देवत्व, मनुष्यत्व, पशुत्व, वा ब्राह्मणत्व, क्षत्रियत्व, वैश्यत्व, वा पुण्य, पाप, स्तब्धता, वा प्रातः, सायं, मध्याह्न, वा ज्ञान, धर्म, अधर्म, वा विराग, ऐश्वर्य, अवैराग्य, वा अग्नि, जल, मृत्तिका, वा स्वः, भुवः, भूः यह निवृत्त वस्तु कही जाती हैं जब वह इन तीन प्रकारकी मायिक वस्तुओंको अधिकार करके त्रिवृत्‌रूपसे विदित होता है तब इसको सगुण ब्रह्म, कार्यब्रह्म, वा हिरण्यगर्भ वा विधाता, वा विराट् पुरुष, वा वैश्वानराग्नि, वा पितामह, वा पद्मयोनि,वा कमलासन इत्यादि कहतेहैं इनका आदिपुरुष वा आदि अवस्था जिसको कारण शरीरी निरूपित किया है जिसको निर्गुण कहकर निरूपण कियाहै इसीको वेदमें आदिपुरुष पुराणोंमें आदिनारायण कहाहै, जो सृष्टिके प्रथम एकार्णव जलमें शयन करते हैं, पांचवें मंत्रमें विराट् पुरुषकी उत्पत्ति इसी कारणशरीरी आदिपुरुषसेही वर्णनकी है, यही निर्गुण वा कारण ब्रह्म चतुष्पाद और षोडशकलात्मक कहेजाते हैं 'ब्रह्मा वा विराट्' इसीके एक पादसे प्रकाश पाते हैं (जगद्रूप) इसी पादका नाम सत्ता है, इस सत्तारूपी पाद वा अंशके न होनेसे मायिक जगत्‌के व्यावहारिक सत्यत्व वा अस्तित्व खपुष्पवत् होजाते हैं, कारणब्रह्मको अब हम वेदके शब्दोंमें व्यवहारकर कहते हैं, वेदमें जिसको त्रिपाद और विष्णु कहा है, विष्णुके सत्य ज्ञान और अनन्त यही तीन पाद हैं,चौथा पाद सत्ता वा अस्तित्व है,सत्तापाद ब्रह्माण्डमें ब्रह्माके सहित स्थित है यह कहचुके हैं अवशिष्ट तीन पाद इसके निज प्रकाशात्मस्वरूपके सहित नीरक्षीरवत् अमृतत्व होरहे हैं, अर्थात् इन तीनके एकत्वको मुक्ति वा वैकुण्ठ कहते हैं, छान्दोग्य ब्राह्मणके चतुर्थ प्रपाठकमें वृष अग्नि हंस मद्गुके सहित सत्यकामके संवादमें कहा है कि पूर्वादि चार दिशा ब्रह्मकी चार कला हैं [कला षोडश भागका एक भाग] यह चार कला ब्रह्मका एक पाद मात्र कहा जाता है, इसका नाम प्रकाशवान् है, प्रकाशवान् पाद ब्रह्मका प्रथम पाद कहा जाता है, पृथिवी अन्तरिक्ष द्युलोक और समुद्र इन चार कलाका और एक पाद है इसका नाम अनन्तवान् है, यह अनन्तवान् ब्रह्मका दूसरा पाद है, अग्नि सूर्य चन्द्र विद्युत् इन चार कलाका नाम ज्योतिष्मान् पाद है यह तीसरा पाद है यह तीन पाद अमृतत्व रूप हैं, ब्रह्मके प्रकाशस्वरूपमें अवस्थान करते हैं, प्राण चक्षुः श्रोत्र वाक् इस चार कलाका और एक पाद है, इसका नाम आयतनवान् यह चतुर्थ पाद है, इस चतुर्थ पादमें अनन्त ब्रह्माण्ड अवस्थान करता है, यही

चतुष्पाद षोडशकलात्मक ब्रह्म पूर्वकथित कारणशरीरी निर्गुण ब्रह्म कहाता है, अर्थात् आदिपुरुष वा विष्णु यही है यदि कहो निर्गुणमें पादकल्पना कैसे संभावित हो सकती है, इसपर सायणाचार्यने भी कहा है कि अनन्त ब्रह्माण्ड उक्त कारणशरीरी ब्रह्मकी अपेक्षा अतिक्षुद्र है, यहां पादचतुष्टय वर्णन करनेमें विवक्षितार्थ जानो । श्रीयुत शङ्कराचार्यके मतमें निरवयव ब्रह्म मायासे सावयव होता है इस मायाके अवयवत्व उसमें आरोपण करके उसको चतुष्पाद वर्णन करते हैं अर्थात् उपासनाके निमित्त निरंशमें अंश आरोपण करते हैं [भोगवत्] देखो अन्नपानादिसे प्राप्त, वा स्त्रीपुत्रादिसे प्राप्त वा गृहशय्याप्रभृतिसे प्राप्त भोग होता है केवल भोग कुछ पदार्थ नहीं, इसकारण जैसे भोगप्राप्तिके निमित्त अन्नपानादिसंसर्गकी अतिआवश्यकता है, इसीप्रकार उपासना करनेके निमित्त मायासे अंशग्रहणकी अतिशय आवश्यकता है, बहुत क्या ब्रह्म बृहत् वा निरवयव है इस ज्ञानसेभी देखो मायाके अंश गृहीत हुए हैं, जैसे बृहतज्ञान क्षुद्रज्ञानसापेक्ष है इसीप्रकार निरवयवज्ञान सावयवज्ञानसापेक्ष है, मायाके अंशग्रहण किये विना, ब्रह्मभावना सिद्ध नहीं होसकती, और ब्रह्मको अतिबृहत् यह भावना करनेपरभी षोडशकला चार पाद इसप्रकार माया अंशमें [अर्थात् मायिकभाव हृदयमें रखकर] प्रथम कल्पना करना होताहै, फिर उपासना करनी होसकती है. अन्यथा ऐसी कोई युक्ति वा उपाय नहीं हैं. जिसके द्वारा मायाकी सहायता विना निरंशत्व स्वरूप ब्रह्मको ध्यानमें प्राप्त करसकै इसका विस्तार वेदान्तदर्शन ३ अ० २ पा० ३३ सूत्रमें " बुद्धार्थपादवत् " इसपर शंकरभाष्य देखनेसे विदित होसकता है [ऋ० ८ । ४ । १७] ॥ ३ ॥

कण्डिका ४-मंत्र १.

त्रिपादूर्ध्वऽउदैत्पुरुषःपादोऽस्येहाभवत्पुनः ॥ ततो विष्वङ्व्यक्रामत्साशनानशनेऽअभि ॥ ४ ॥

ऋष्यादि-(१) ॐत्रिपादूर्ध्वइत्यस्यर्षिः पूर्ववत् । आर्ष्यनुष्टुप्छन्दः । वि० पू० ॥ ४ ॥

मंत्रार्थः-जो यह (त्रिपात्) तीन पादयुक्त संसारस्पर्शरहित (पुरुषः) ब्रह्म (ऊर्ध्वः) इस अज्ञानकार्य संसारसे बहिर्भूत अर्थात् इसके गुण दोषोंसे अस्पृष्ट होकर उत्कृष्टतासे (उदैत्) स्थित हुआ है (अस्य) इसका (पादः) लेशरूप जगत (इह) इस मायामें (पुनः) फिर (अभवत्) प्राप्त होता हुआ

अर्थात् सृष्टिसंहारद्वारा वारंवार आगमन करता है "विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्" [गी० १० । ४२] (ततः) मायामें आनेके उपरान्त (विष्वङ्) देवतिर्यगादिमें विविधरूप होकर (साशनानशने) अशनादिव्यवहारयुक्त चेतन प्राणिसमूह इससे रहित गिरिनदीआदिक अर्थात् स्थावर जंगमको (अभि) देखकर (व्यक्रामत्) व्याप्त करता हुआ ॥ ४ ॥

विस्तार–पूर्व मंत्रमें कथित विष्णु ऊर्ध्व उदित होते हैं अर्थात् संसारमें रहकरभी संसारके गुणदोषोंसे रहित हैं, यह सायण कहते हैं अथवा बृहत्त्व और सूक्ष्मत्वकी पराकाष्ठा है, यह कठश्रुति कहती है " इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः। मनसश्च परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्परः। महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः । पुरुषान्न परं किंचित्सा काष्ठा सा परा गतिः" अथवा ऊर्ध्व कहनेसे सर्व प्रधान सत्यलोकका बोध होताहै ऊर्ध्व उदितका अर्थ यह कि भूः भुवः स्वः महः जनः तपः इन लोकोंमें त्रिपाद पुरुष गूढरूपसे स्थित है "एष सर्वेषु भूतेषु गूढोत्मा न प्रकाशते" यह आत्मा सब भूतोंमें गूढ होनेसे प्रकाशित नहीं होता है परन्तु जब सत्यलोकगामिनी बुद्धि होती है तभी प्रकाशित होताहै, " दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः" ऊर्ध्व उदयका अर्थ यह है कि जगत्के दुःखोंसे बाहर होकर विद्यमान है, तथा च श्रुतिः " सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः। एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः " सूर्य सबकी चक्षुओंके अधिष्ठातृदेवता हैं परन्तु चक्षुओंमें जितने दोष हैं उनसे वह लिप्त नहीं होते इसीप्रकार वह सर्व भूतोंमें वर्तमान होकर उनके दोषोंसे लिप्त नहीं होता, अथवा इन दृश्यमान सूर्यका आत्माही त्रिपात् पुरुष प्रतिदिन उदय होताहै इसीकारण सावित्रीमें सविताकी उपासना कही है तथा "सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च " [ऋ० सू० ११५] उसका आयतनवान् नामक चौथा पाद वारंवार मायासे आविर्भावतिरोभाव होता है मायाशक्ति जो सर्जनइच्छासे पहले अव्यक्त थी वह उसका निजशरीर होकर व्यक्त होतीहै [ऋ० ८ । ४ । १७] ॥ ४ ॥

कण्डिका ५–मन्त्र १.

ततो॑ वि॒राड॑जायत वि॒राजो॒ऽअधि॒ पूरु॑षः ॥ स जा॒तोऽअ॒त्यरि॑च्यत प॒श्चाद्भूमि॒मथो॑ पु॒रः ॥ ५ ॥

ऋष्यादि-(१)ॐततइत्यस्य ना० ऋषिः । इत्यादि पूर्ववत् ॥ ९ ॥

मंत्रार्थः-(ततः) इसके उपरान्त उस आदिपुरुषसे (विराट्) ब्रह्माण्डदेह जिसमें अनेक प्रकारकी वस्तु विराजमान होती हैं वह (अजायत) प्रगट हुआ (विराजः) विराट् (अधि) देहके ऊपर उसी देहको अधिकरण करके (पुरुषः) उस देहका अभिमानी एकही पुरुष हुआ अर्थात् सम्पूर्ण वेदान्तसे जान्ने योग्य परमात्मा, अपनी मायासे विराट्देह ब्रह्माण्डकी रचनाकर उसमें जीवरूपसे प्रवेश करके उसके अभिमानी देवतात्मा जीवरूप हुआ "स वा एष भूतानीन्द्रियाणि विराजं देवताः कोशांश्च सृष्ट्वात्र प्रविश्य इव विहरति" इति [नृसिं०ता०२।९] और (सः) वह विराट् पुरुष (जातः) प्रगट होकर (अत्यरिच्यत) अतिरिक्त देवता तिर्यङ् मनुष्यादिरूप हुआ (पश्चात्) देवादि जीवभावके उपरान्त (भूमिम्) भूमिकी रचना करता हुआ (अथो) भूमिरचनाके उपरान्त उन जीवोंके (पुरः) सात धातुओंसे पूर्ण होनेवाले शरीरोंको रचना करताहुआ ॥ ९ ॥

विस्तार-परब्रह्म:त्रिपात् पुरुषसे उत्पन्न हिरण्मय 'तेजोमय' अण्डमध्यमें जो स्वयं प्रादुर्भूत हुए हैं उनको स्वयंभू, हिरण्यगर्भ, प्रजापति, ब्रह्मा और विराट् कहते हैं विना योगके स्वयं होनेसे इनको स्वयंभू कहते हैं तेजोमय अण्डके मध्यमें होनेसे हिरण्यगर्भ कहते हैं, देवतिर्यगादि अनेकरूपसे प्रगट होनेसे और आपही उनको विधि निषेधके नियम कहते हैं, इससे प्रजापति कहतेहैं सगुण वा साकार होनेसे वही ब्रह्मा है, उनके द्वारा सब वस्तु प्रकाश पाती हैं, इससे विराट् कहे जाते हैं, इन एकही परमात्माके कार्यानुरूप अनेक नाम हैं, उन्ही आदि पुरुषसे ब्रह्माण्ड हुआ है, इन्ही परमात्माकी अघटनघटनापटीयसी शक्ति माया कही जाती है, इसकेभी प्रकृति अव्यक्तादि अनेक नाम हैं, सृष्टि दो प्रकारकी है एक ब्रह्माकी सृष्टि और एक ब्रह्मकी सृष्टि. ब्रह्माकी सृष्टिसे पहले यह सब जगत् एकार्णव जलमें बीजरूपसे स्थिति करता है, परन्तु प्रकृति उससमयभी व्यक्त रहती है, इसकोही खण्डप्रलय कहते हैं इसके उपरान्त ब्रह्माही सृष्टिकी रचना करते हैं और जब प्रकृति अव्यक्त भावको प्राप्तहोती है उसे महाप्रलय कहते हैं महाप्रलयके उपरान्त जो सृष्टि होतीहै उसको ब्रह्मकी सृष्टि कहते हैं वही आदि सृष्टि कहलाती है उससे पहले एकमात्र ब्रह्मही स्थितिकरते हैं और कुछ नहीं उस समय प्रकृती अखण्ड सच्चिदानंदमें लीन रहती है यह ब्रह्माकी सृष्टिकी समान बार-बार नहीं होती किन्तु एकवार प्रगट होकर ब्रह्माकी आयुपर्यन्त महाप्रलयतक रहतीहै ब्रह्माकी सृष्टि चौदह मन्वन्तर बीचनेसे समाप्त होकर फिर होतीहै ब्रह्माकृत सृष्टिके एकवार होनेमें प्रमाण "सकृद्ध द्यौरजायत सकृद्भूमिरजायत । पृश्न्या दुग्धं

सकृत्पयस्तदन्यो नान्वजायत" इति [ऋ० अ० ४ अ० ८ व० ४ मं० ६ । ८४ सू०२२मंत्र]एकवारही भूलोक मरुद्गणोंकी मातासे द्युलोक उत्पन्न हुआ यह बारबार नहीं एकवार होताहै अर्थात् खण्डप्रलयमें कोई पदार्थ नष्ट नहीं होता बीजरूपसे सब स्थित रहते हैं ब्रह्मा जिस समय जलको घनीभूत करके भूमिकी रचना करते हैं, उस समय भूमिसे सब पदार्थोंके बीज प्रगट होकर द्युलोकादि सब आविर्भूत होते हैं द्युलोकसे द्युलोकवासी देवगणका बोध होता है, मरुतगणोंकी माता दिति देवी है दुग्धसे औषधि व्रीहिआदि शस्य जान्नी, यही मंत्र सांख्यशास्त्रका मूलसूत्र है,अर्थात् खण्डप्रलयमें नूतन कुछ नहीं होता "ऋतं च सत्यं चाभीद्धात" से "सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो,स्वः" [ऋ० १० मं०१९ सू०१।२।३।मंत्र]आशय यह कि दिन रात सूर्य चन्द्र स्वर्गादि जिस प्रकार पूर्वमें विधाताने बनाये थे उसी प्रकार इस कल्पमें निर्माण किये हैं,इसी मंत्रके प्रथमार्द्धमें ब्रह्मकृतसृष्टि और उत्तरार्धमें ब्रम्हाकृत सृष्टिका उल्लेख हुआ है परन्तु ब्रह्मका सृष्टि मायाकी सहायतापूर्वक होती है इसका प्रमाण तैत्तिरीयारण्यक ८ प्रपाठक ६ अनुवाकमें है "सोऽकामयत बहुस्यां प्रजायेय इति स तपोऽप्यत स तपस्तप्त्वा इदं सर्वमसृजत यदिदं किञ्च । तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत् तदनुप्रविश्य सच्च त्यच्चाभवत्" उसने संसारवती मायाशक्तिसे एकके बहुत होनेकी इच्छा की और तप करके इस जगत्के सब पदार्थोंकी रचना की और फिर जीवभावसे उनमें प्रवेश कर मूर्त और अमूर्त दोभावको प्राप्त हुआ जब यह सृष्टिके कारण प्रगट होते हैं तब ब्रह्माकी सृष्टि होती है यथा "आपो वा इदमासन् सलिलमेव स प्रजापतिरेकः पुष्करपर्णे समभवत् तस्यान्तर्मनसि कामः समवर्तत इदं सृजेयमिति" [तै० आ० १ प्र०२३ अनुवाक०] अर्थात् सृष्टिके प्रथम जलमात्रही था इसी एकार्णव जलके मध्यमें पुष्करपर्ण प्रदेश [महाकाश] में जगदीश्वर प्रजापति सृष्टिके निमित्त सम्यक् रूपसे आविर्भूत होकर स्थिति करने लगे उनके मनमें पूर्ववत् सृष्टिका संकल्प उदयहुआ "कामस्तदग्रे" इत्यादि अर्थात् प्रजापतिद्वारा प्रथम सृष्टिका संकल्प हुआ और ब्रह्माने दूसरे प्रजापतियोंकी रचना की वे जितेन्द्रिय प्रजापतिगण अपने २ हृदयमें प्रत्येक सृष्टिप्रकारके संकल्पको दृढ करके व्यक्त जगत्के उत्पत्तिनिमित्त संकल्पको अव्यक्त कारणसे आकर्षणपूर्वक लाभ करते हुए, इसका आशय यह कि देवता दो प्रकारके होते हैं कर्मदेव और आजान नामक देशमें उत्पन्न मनुष्यजातिकी समान एक देवजाति।जो विशेष कर्मद्वारा विदेहकैवल्यको प्राप्त होकर ब्रह्मलोकमें ब्रह्माके शरीरके साथ सायुज्य लाभ करके मुक्त पुरुष होकर रहतेहैं,उनको कर्मदेव कहतेहैं

इन कर्मदेवगणको भी प्रजापति कहते हैं,सृष्टिके समय ब्रह्मा अपना शरीर कम्पित कर इनको प्रथम अपने शरीरसे पृथक् करलेते हैं यह भी सृष्टिरचना करते हैं, और जितेन्द्रिय प्रजापति कहाते हैं यह उत्तरार्द्धका भावार्थ कहा, अब शब्दार्थ विवरण लिखते हैं पशु पक्षी कृमिकीटको तिर्यक्जाति कहते हैं इनकी तमोगुण-प्रधान प्रकृति है अर्थात् शरीरकी उपादान वस्तु और ज्ञानउपादानतत्व सबही तामससे उत्पन्न है, इस कारण आहार निद्रा भय मैथुन इन चारसे अधिक कुछ नहीं जान्ते, इस निमित्त तियक् जाति अतिनिकृष्ट है मनुष्यजाति रजःप्रधान है इस कारण यह कुछ ज्ञान और धर्ममें भी प्रवृत्त है. देवजाति सत्वप्रधान प्रकृतिसे उत्पन्न है, इस कारण निरन्तर वेदवेदाङ्ग और धर्म ज्ञानमेंही रत है,इससे यह सर्वोत्कृष्टजाति है, ब्रह्माने इन तीन प्रकारकी जातियोंको उनके पूर्वकर्मानुसार प्रगट किया, पीछे भूमिकी सृष्टि की अर्थात् रस रक्त मांस अस्थि मज्जा शुक्र और तेज इस सात प्रकार शरीरके उपादानकी सृष्टि की इन्ही सप्तधातुद्वारा सब जीवोंके शरीर निर्माण किये,यह सात धातु समष्टि होकर जीवके शरीररूपसे परिणत होती हैं और जीवगण निज २ कर्मानुसार देवता मनुष्य सिंह सरीसृपादियोनियोंको प्राप्त होते हैं,सामवेदीय छान्दो० ६ प्रपाठकमें "त इह व्याघ्रा वा सिंहा वा वृका वा वराहा वा कीटा वा पतङ्गा वा दंशा वा मशका वा यद्यद् भवन्ति तदा भवन्ति" इस लोकमें जो जिस रूपसे है वारंवार कर्मानुसार उसी रूपसे जन्मग्रहण करतेहैं सहस्र कोटि युग परेभी सृष्टि इसी प्रकार होगी संसारियाकी वासना विलीन नहीं होती जो मनुष्यमें सिंहादिकी वासना करैगा वह सिंह अर्थात् कर्मजन्य जैसी वासना होगी वैसाही फल प्राप्त होगा वही योनि प्राप्त होगी जबतक ज्ञानद्वारा कर्मबन्धन नष्ट न होगा यही दशा रहेगी इसी निमित्त बुद्धिमान् वेदवेदाङ्गका विचारकर एकक्षणभी वृथा नहीं खोतेहैं 'ततोके' स्थानमें 'तस्मात्' पाठ है [ऋ० ८ । ४ । १७] ॥ ५ ॥

कण्डिका ६—मन्त्र १.

तस्माँद्यज्ञात्सर्व्वहुतःसम्भृतम्पृषदाज्ज्यम् ॥ पशूँस्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्याग्ग्राम्म्याश्च्चये ॥ ६ ॥

ऋष्यादि-(१) ॐतस्मादित्यस्य नारायणऋषिः। आर्चीपंक्तिश्छं०। पुरुषो देवता । वि० पू० ॥ ६ ॥

मन्त्रार्थः-(तस्मात्) उस (सर्वहुतः) सर्वात्मा पुरुष जिस यज्ञमें हवनद्वारा पूजेजाते हैं उस पुरुषमेध (यज्ञात्) यज्ञसे (पृषदाज्यं) दधिमिश्रित घृत (सम्भृ-

तम्) सम्पादित हुआ दधि आज्यआदि भोग्यजात वस्तु पुरुषद्वारा प्रगट हुई और उस पुरुषने (तान्) उन (वायव्यान्) वायुदेवतावाले (पशून्) पशुओंको (चक्रे) उत्पन्न किया, "अन्तरिक्षदैवत्याः खलु वै पशवः" इति श्रुतेः (ये) जो (आरण्याः) वनके पशु हरिणादिक (च) और (ग्राम्याः) ग्रामके पशु गौअश्वादि हैं ॥ ६ ॥

विशेषः–सर्व विश्व संसार पुरुष जिस यज्ञमें आहुत हुए उस मानसयागको सर्वहुत कहते हैं, सर्व प्रथम दधिघृतादिवस्तु प्रगटहुई यहां दधिघृतादि भोग्य वस्तुसे वृक्षोंके रसविशेष जानै, यह घृतदधिका उपलक्षण है पर्वतवासी योगीगण इन्हीं वृक्षोंके पृषदाज्यस्वरूप अन्नफलोंको भोजन कर क्षुधातृष्णा निवृत्त करते हैं, यहां दधिघृतसे उत्पन्न होनेवाले जीवोंके खाद्यपदार्थकी सृष्टि जानै कोई कहते हैं उस सर्वहुत यज्ञ पुरुषद्वारा दधिमिश्रित घृत [श्लेष्मामिश्रितरेत] सम्पादित हुआ उससे ग्रामचारी अरण्यचारी और (च) कहनेसे नभश्चारी जीव उत्पन्न हुए इस स्थलमें यथार्थ कर्तृत्व ब्रह्मको मानकर ब्रह्मासे अस्मदादिपर्यन्त यथार्थ कर्तृत्व नहीं है ऐसा दिखाया है इसीसे कहा है उससे प्रगट हुए [ऋ० ८ । ४ । १७] ॥ ६ ॥

काण्डिका ७–मंत्र १.

तस्म्माद्यज्ञात्सर्व्वहुतऽऋचः सामानिजज्ञिरे ॥ छन्दा᳖ꣳसिजज्ञिरेतस्म्माद्यजुस्तस्म्मादजायत ॥७॥

ऋष्यादि–(१) ॐतस्मादित्यस्य नारायणऋषिः।आर्ष्यनुष्टुप्छन्दः। पुरुषो देवता । वि० पू० ॥ ७ ॥

मन्त्रार्थः–(तस्मात्) उस (सर्वहुतः) सर्वहुत (यज्ञात्) यज्ञपुरुषसे (ऋचः) ऋक् (सामानि) साम (जज्ञिरे) उत्पन्नहुए (तस्मात्) उसीसे (छन्दांसि) छन्द 'अथर्वमंत्र' (जज्ञिरे) प्रगट हुए (तस्मात्) उससे (यजुः) यज्ञात्मक यजुः (अजायत) प्रगट हुआ ॥ ७ ॥

विस्तार–ऋक्संहिता अक्षरमात्रा छन्दके नियमसे ग्रथित है इसके दो भेद हैं प्रथम जो स्वरयोगसे गीतिको प्राप्तहोकर सामनामक होजाते हैं यह साम मूल ऋक् कहाते हैं, और एक वह जो गीतिमें नहीं आते हैं । सामवेदमें साम मूल सम्पूर्ण ऋचा आर्चिक ग्रन्थमें पाईजातीहैं इसप्रकारके ऋचामय ग्रन्थको आर्चिक कहते हैं सामवेदसंहिता दो अंशोंमें विभक्त है एक आर्चिक और दूसरा गान ग्रंथ कहलाता है, छन्दोमय ऋचा यह विशेषणयुक्त कहैं तो यह अर्थ करना

होगा कि जिनका छन्दोरूपत्व अविनाशी अर्थात् गीतिकेद्वारा नष्ट नहीं होता साम मूल ऋक्भी छन्दोरूप है परन्तु सामगानसमयमें उसका छन्दोरूपत्व नष्ट होजाता है

वेदकी रचना तीन प्रकार है कुछ पद्यात्मक, कुछ गीतात्मक, और कुछ गद्यपद्यात्मक अर्थात् जिनमें छन्द कलपना नहीं होती है । इसी कारण वेदको त्रयी कहते हैं पद्यात्मक ऋक्, गीति साम, गद्यपद्यात्मक यजु कहाता है, इसका वर्णन महर्षिजैमिनिने भी भलीप्रकार निरूपण किया है, "तेषामृङ्मन्त्रार्थवशेन पादव्यवस्था १ गीतिषु सामाख्या २ शेषे यजुःशब्दः ३ ।" शावरभाष्यमें इसका विस्तार लिखा है प्रश्न–जब कि ऋक् सब छन्दोबद्ध हैं तो फिर 'छन्दांसि' कहनेकी आवश्यकता क्या है? उत्तर–फिर 'छन्दांसि' कहनेकी आवश्यकता यह है कि इससे अथर्वका भी बोध होता है यदि कहो कि यहां तो केवल लक्षणमात्र कहे हैं तीन विद्याके अन्तर्गत अथर्वभी आगया और यज्ञ तीनही वेदोंसे निर्वाह हो जाताहै, यही बात नहीं अथर्वमेंभी यज्ञविधान देखा जाता है इससे 'छन्दांसि' कहा, और यदि त्रयीके अन्तर्गत अथर्वको माना जाय तो 'छन्दांसि' का यह अर्थ होताहै 'छन्दांसि' कहनेसे छन्दविधायक श्रुतियोंका बोध होता है इस प्रकारसे ब्राह्मणभागभी उसी यज्ञपुरुषसे प्रादुर्भूत हुआ है यह बोध होता है वेदके दो भाग हैं एक मंत्रभाग जो संहिता कहाती है, दूसरा ब्राह्मणभाग जो विधिभाग कहाता है. यही दोनो भाग मिलकर वेद कहाताहै यह याज्ञवल्क्य कात्यायन तथा आपस्तम्ब महर्षि कहते हैं "मंत्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्" इसकारण यह उसीसे प्रादुर्भूत है, व्यासजीने "शास्त्रयोनित्वात्" प्र० अ० १ पाद ४ सूत्र कहा है इसके भाष्यमें भी इस प्रकरणको लिखा है इस वचनसे कोई २ मनुके शास्त्रमें तथा दूसरे ग्रंथोंमें विरोधकी शंका करते हैं कि "अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम् । दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुस्सामलक्षणम्" मनु और "तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रयो वेदा अजायन्ताग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात्सामवेदः" [श० ११ । ५] अर्थात् ब्रह्माजीने अग्निसे ऋग्वेद वायुसे यजुर्वेद आदित्यसे सनातन सामवेदको देवगणके यज्ञ सिद्ध करनेके निमित्त आकर्षण किया, पहले हम इसीका अर्थ लिखकर पीछे शतपथश्रुतिका अर्थ लिखेंगे अग्नि वायु रवि क्या वस्तु हैं यह कोई ऋषि नहीं है परन्तु दूसरी बात है इसका भेद जाननेसे कोई विरोध नहीं आता है, इसके तत्वको न जानकर ही मनुसे विरोध पाया जाता है, यह कथनमात्र भिन्नसा दीखता है वास्तविक नहीं अग्नि वायु रवि यह तीन वस्तु ब्रह्माके शरीरमेंही विद्यमान हैं उसमें जिस समय अग्नि धातु संधुक्षित होती है तब ऋक् मंत्र बाहर होतेहैं, जिस समय शारीरिक वायुको प्रवाहित करनेलगे उस समय यजु मंत्र प्रका-

शित हुए, जिस समय शारीरिक सूर्यधातुको उत्तापित किया उस समय साममंत्र प्रगट हुए, यह अनुभवसेभी देखनेमें आता है कि जो ऋग्वेदको स्वरसहित अध्ययन करतेहैं पाठ करते हैं पाठकरतेमें उनके मस्तिष्क और प्राणवायुमें आघात नहीं लगता केवल जाठराग्नि उद्दीपित होतीहै इससे ऋग्वेदका प्रकाश जाठराग्निसे होताहै । यजुःका उच्चारण कठिन है उसके उच्चारणमें हांपनी आकर श्वांस तीव्र होता है अर्थात् प्राणवायु उद्दीप्तिको प्राप्त होती है इससे यजु वायुद्वारा प्रगट कहा । सामवेदका उच्चारण यजुकी समान कठिन न होकर स्वरग्राम मूर्छना तानलयादिसंयुक्त होनेसे उसके द्वारा मस्तिष्कमें आघात होता है मस्तकही आदित्यका स्थान वा आदित्य है इससे सूर्यसे सामवेदका प्रगट होना कहा इसप्रकार ब्रह्माजीने जाठराग्नि, प्राण, और मस्तिष्कस्थान आदित्यसे तीन वेदोंको आकर्षण कर पूर्ण किया,तथाच श्रुतिः "सोकामयत बहु स्यां प्रजायेयेति सोऽश्राम्यत्स तपोतप्यत तस्माच्छ्रान्तात्तपनात्त्रयो लोका असृज्यन्त पृथिव्यन्तरिक्षं द्यौः । स इमांस्त्रीँल्लोकानभितताप । तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रीणि ज्योतींष्यजायन्ताग्निर्योयं पवते सूर्यः । स इमानि त्रीणि ज्योतींष्यभितताप। तेभ्यस्तप्तेभ्यः" इत्यादि [श० ११।४।२।१-२-३] "स इमांस्त्रीन्वेदानभितताप तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रीणि शुक्राण्यजायन्त भूरित्यृग्वेदाद्भुव इति यजुर्वेदात्स्वरिति सामवेदात्" इत्यादि [श० ११ । ४ । २ । ४] प्रजापतिने प्रजारचनाकी इच्छासे तप किया और तप करके त्रिलोकी उत्पन्न की, फिर उन त्रिलोकीको ताप देकर उसका सार भाग तीन ज्योति अग्नि वायु रवि निकाली फिर इन तीनोंको ताप देकर ऋक्, यजु, सामके मंत्र निकाले इनको ताप देकर भूः भुवः स्वः निर्गत किया आशय यह कि भूमिका सार अग्नि अग्निका सार ऋग्वेद है ऋग्वदमें भूमिसम्बन्धी पदार्थोंका विशेष रूपसे कथन है, यजुर्वेदमें वायुसम्बन्धी अन्तरिक्ष पदार्थोंका विशेष रूपसे कथन है, जैसे यज्ञ करना उसका फल स्वर्गगमन और अन्तरिक्षसे फिर आहुतीका मेघरूपसे परिवर्तन हो भूमिपर आना, सामका आदित्यप्रकाशरूपसे सम्बन्ध है उसमें गानादिके द्वारा परमानंदकी प्राप्ति होती है " वेदानां सामवेदोस्मि" [गी०] यह सब कुछ प्रजापतिके मानसिक संकल्पमेंही प्रगट हुआ है अब यह स्पष्ट होगया कि अग्नि वायु रवि इस स्थलमें ऋषियोंका नाम नहीं है दयानंद भिक्षुकने शतपथका प्रसंग विना देखे अग्नि वायुको ऋषि कहकर अल्पज्ञोंको वडे भ्रममें डालदिया है उनका कथन मिथ्याही है [ऋ० ८ । ४ । १७] ॥ ७ ॥

कण्डिका ८-मंत्र १.

तस्म्मादश्श्वाऽअजायन्तुयेकेचौभयादंतः ॥ गावौ ह्जज्ञिरेतस्म्मात्तस्म्माज्जाताऽअंजावयं: ॥ ८ ॥

ऋष्यादि-(१) ॐतस्मादित्यस्य नारायणऋषिः । निच्यृदार्ष्यनुष्टु-प्छं० । पुरुषो देवता । वि० पू० ॥ ८ ॥

मन्त्रार्थः-(तस्मात्) उस (यज्ञात्) यज्ञ पुरुषसे (अश्वाः) घोडे (अजायन्त) उत्पन्न हुए (च) और (ये) जो (के) कोई घोडोंसे अतिरिक्त गर्दभादि तथा (उभयादतः) ऊपर नीचेके दांतोंसे युक्त उत्पन्न हुए (ह) प्रसिद्ध है कि (तस्मात्) उस यज्ञ पुरुषसे (गावः) गौऐं (जज्ञिरे) प्रगटहुईं (तस्मात्) उस्से (अजावयः) भेडबकरी (जाताः) उत्पन्न हुईं ॥ ८ ॥

विशेषः-६ मन्त्रमें सामान्यतासे आरण्य और ग्रामके पशु उत्पन्न होने कहे इस मंत्रमें यज्ञकार्यसाधक विशेष पशुओंका निरूपण किया है उस मंत्रमें यज्ञ-साधक पशुओंका वर्णन किया है ब्राह्मणभागमें उनके चिह्नभी लिखे हैं "स्थूल-पृषतीमाग्निवारुणीमनड्वाहीमालभेत" जिसका शरीर हृष्टपुष्ट गोल बड़े बडे चिन्होंसे युक्त हो नेत्र सूर्य और अग्निकी समान रक्तवर्ण हो उस गौको यज्ञके घृत दुग्धके निमित्त ग्रहण करके फिर प्रदान करदे इत्यादि यहां यज्ञीय पशु-ओंका वर्णन किया है इससे पहले ६ मंत्रसे इसमें भेद है [ऋ० ८।४।१७] ॥८॥

कण्डिका ९-मंत्र १.

तंय्यज्ञम्बर्हिषिप्प्रौक्षन्पुरुंषञ्जातमंग्ग्रतः ॥ तेनंदेवाऽ अंयजन्तसाद्ध्याऽऋषंयश्च्चये ॥ ९ ॥

ऋष्यादि-(१) ॐतंयज्ञमित्यस्यर्ष्यादि पूर्ववत् ॥ ९ ॥

मन्त्रार्थः-(अग्रतः) सृष्टिके पूर्व (जातम्) प्रगट हुए अर्थात् पुरुषरूपसे प्रादुर्भूत (तम्) उस (यज्ञं) यज्ञसाधनभूत (पुरुषम्) पुरुषको (बर्हिषि) मानस-यज्ञमें (प्रौक्षन्) प्रोक्षणादि संस्कारोंसे संस्कार करते हुए (तेन) उसी पुरुषसे (ये) जो (साध्याः) साध्य (देवाः) देवगण (च) और (ऋषयः) ऋषि अर्थात् सृष्टिसाधनयोग्य प्रजापति और उनके अनुकूल मंत्रद्रष्टा ऋषि (अयजन्त) मानसयागको निष्पन्नकरतेहुए ॥ ९ ॥

विस्तार–मानसयज्ञमें यजन किया तब विराट् पुरुषको किस यूपमें बंधन किया होगा, महात्माओंका कथन है कि दृढविश्वासरूपी स्तंभमें विराट् पुरुष बांधे जातेहैं यह सामान्ययूप नहीं किन्तु अनन्त अनादि आत्मामें गड़ाहुआहै इसका अग्रभाग द्युलोकसेभी ऊंचा है इस विराट् पुरुषको एकवार इस विश्वासके स्तंभमें बांधलेनेसे समस्त ब्रह्माण्डके प्राणियोंको बांधलिया जासकताहै सर्वमेध-प्रकरणमें भी इसका प्रकरण आवैगा यह विराट् पुरुष आदिनारायण वा त्रिपाद् पुरुषके निमित्त उत्सर्ग किये जाते हैं, अन्तर इनमें यह है कि त्रिपाद पुरुष कारणशरीरी निर्गुण निराकार है, विराट् पुरुष कार्यशरीरी सगुण साकार कहा-तेहैं, इसप्रकार अन्तर अधिक है, यद्यपि यह सम्बन्ध निरूपण करना कठिन है तौभी जो हमारे सर्वसम्वन्धयुक्त अनुभवगम्य परात्पर आदिनारायण हैं वही त्रिपाद् पुरुष है 'मानसयाग किया' इसका आशय यह है कि जबतक देवताओंने उत्सर्गके निमित्त विराट् पुरुषको मानसयागमें यजन न किया, तवतक यज्ञ पूर्ण न हुआ, और उत्सर्ग करते ही वह मानसयाग पूर्ण होगया, इस भावको विचारना चाहिये कि जव मनसे विराट् पुरुष छोडदिया जाता है उसी समय वह प्राणी त्रिपाद पुरुषको प्राप्त होताहै मुक्तिका अधिकारी होताहै इस विषयमें जितना प्रवे-श कराजाय उतनाही गूढ तात्पर्य विदित होता जाता है हमको अभी और कुछ कहना है इसकारण निवृत्त होते हैं, इस मानसयागके कर्ता साध्य देवता और ऋषिगण हैं ब्रह्माजीके शरीरसे प्रगट हुए प्रजापति मरीचिआदि सृष्टिसाधन योग्योंकोही इस स्थलमें साध्य कहाहै, और जो वेदमंत्रोंको प्रत्यक्ष किये रहते हैं मनोमात्रशरीरी ब्रह्माके साथ मुक्त होनेवाले पुरुष ही इस स्थलमें ऋषि कथन किये हैं यह साध्य देव और ऋषिगण ब्रह्माकी सृष्टिकी इच्छा करनेके उपरान्त ब्रह्माके शरीर-मनोमात्रशरीरी होकर प्रगट होते हैं, सर्वहुत वा विराट् यज्ञ यही सम्पादन करतेहैं यह इस जगत्में स्थावर जंगमादि सृष्टिके कर्ता हैं इस कारण वेदमें इनको प्रजापति-भी कहाहै उनमें कितनोंहीने सृष्टिरचना की, इस कारण उनको मंत्रद्रष्टा और ऋषिभी कहतेहैं, आशय यह कि यह साध्यगण हमारे पिता और ब्रह्माजी पितामह कहेजातेहै, इससे सृष्टिके कर्ता अनेक न जान्ने किन्तु जिससे यह विराट् हुआ है कर्ता वही एक है यथा "एको देवः सर्वभूतेषु गूढः" और "हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्" [ऋ० मं० १० सू० १२१ मं० १] इससे एकही कर्ता जानाजाताहै यदि कहो इन्द्रचन्द्रादि अनेक देवताओंकी ईश्वर-भावसे स्तुति लिखीहै इस सन्देहको वेदही दूरकरताहै "इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुः" [ऋ० मं० १ सू० १६४ मं. ४६] तथा "रूपं रूपं मघवा बोभवीति"–वही अनेक-

रूप होताहै सब उसीके नाम हैं [ऋ० मं०३ सू० ५३ मं० ८] और "मित्रो अग्नि-र्भवाति" [ऋ० मं०३ सू०५ मं०४] "त्वमग्ने पुरुरूपः" [ऋ०मं०५ सू०८मं०५]तथा मण्डल१०का१२५वा अहं रुद्रेभिः सूक्त तथा "तदेवाग्निस्तदादित्यः"[यजु०अ०३-२ मं०] इत्यादि अनेक स्थलोंमें अनेक देवतोंके नामसे एक ईश्वरकाही वर्णन किया है; कार्यके निमित्त अनेक नामसे वह एक ईश्वरही निरूपित हुआ है यदि कहो तो अनेक विधिसे निरूपण क्यों कियाहै तो यह जान्ना कि सृष्टिके साधनयोग्य जिनको स्वीकार किया है, वह प्रजापाति कहे जाते हैं, इन्हींके द्वारा विराट् यज्ञका विस्तार होताहै यज्ञान्तमें विधाताकी इच्छानुकूल यह प्रजापति और साध्य जो मनमें संक-ल्प करते हैं वह सम्पन्न होजाता है "आप्नोति स्वराज्यम् " इस श्रुतिके अनुसार ईश्वरकी सायुज्य मुक्तिको प्राप्त पुरुष सम्पूर्ण ऐश्वर्यसम्पन्न होते हैं "सर्वे ह अस्मै देवा वलिमावहन्ति" तथा " तेषां सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति" सब देवता उनको उनको उपहार देतेहैं और सब लोकोंमें उनकी यथेच्छ गती होती है जगत्कर्तृत्वव्यापारको छोडकर और वे सब कुछ करसकते हैं, यही ब्रह्मसूत्र [अ० ४ पा० ४ सू० १७] "जगद्व्यापारवर्ज्जं प्रकरणादसन्निहितत्वात्" में कहाहै श्रीयुत शंकराचार्यजी भाष्यमें कहतेहैं ईश्वरकी सायुज्यमुक्ति प्राप्त होनेवालोंको जगत् सृष्टिको छोडकर और सम्पूर्ण अणिमादि ऐश्वर्य प्राप्तहोते हैं. जगतका व्यापार नित्यसिद्ध ईश्वरमें ही है इस कारण उक्त साध्य देव महर्षि सब विधाताकेही नियमके आधीन हैं एकमात्र हिरण्यगर्भही जगत्के कर्ता हैं यह महर्षि प्रजापति इन्हीकी इच्छाके अनुसार कर्तृत्व ग्रहणकर सृष्टि करतेहैं जैसे राजाकी आज्ञानुसार मंत्री-आदिको कर्तृत्व प्राप्त है इसी प्रकार साध्यगणादिको है, यह प्रजापाति कि-सरूपसे ब्रह्माके सहित सायुज्य लाभ करतेहैं यह कौषीतकी उपनिषद्में लिखा है "ते तेषु ब्रह्मलोकेषु परापरावतो वसन्ति तस्मिन् वसति शाश्वतीः समाः सा या ब्रह्मणो जितिः या च व्युष्टिः तां जितिं तां व्युष्टिं व्यश्नुते तद्य एवैतद्ब्रह्मलोकं ब्रह्मचर्येण अनुविन्दन्ति" अर्थात् जिन्होंने जितेन्द्रिय होकर अर्थसहित वेदपाठा-दिकार्यद्वारा जीवन व्यतीत किया है उनका ब्रह्मलोकमें गमन होताहै ब्रह्माकी समानआयु होकर उस स्थलमें निवास करतेहैं ब्रह्माकी समान उनमें उत्कर्षता होतीहै तथा ब्रह्माकी समान व्याप्तिलाभ करते हैं आशय यह कि यह पुरुष ब्रह्माके शरीरकी सायुज्य लाभ करके ब्रह्मलोकमें निवास करते हैं, सृष्टिरच-नामें उपयुक्त इन पुरुषोंको ही सृष्टिकरनेके समय ब्रह्माजी अपने शरीरसे प्रगट

करते हैं, मानसयाग करनेवाले साध्य और ऋषिगणके शरीरविषयमें कुछ लिखते हैं अर्थात् संकल्पका साधन मन तो सिद्धही है शरीर वा बाह्य इन्द्रिय ऐश्वर्य होताहै वा नहीं इसमें कहते हैं।

"अभावं बादरिराह ह्येवम्" [शा० अ० ४ पा० ४ सू० १०]

बादरि आचार्य "मनसैतान्कामान्पश्यन्रमते य एते ब्रह्मलोके" ब्रह्मलोकमें शरीर इन्द्रियसे विना केवल मनसे ही भोगसाधन है ब्रह्मलोकके ऐश्वर्यको मनसे अनुभवकर रमण करता है इस श्रुतिको देखकर ब्रह्मलोकको प्राप्त हुए पुरुषोंको शरीर इन्द्रियका अभाव मान्ते हैं अर्थात् उनका शरीर मनोमयमात्र होताहै परन्तु जैमिनि कहते हैं।

"भावं जैमिनिर्विकल्पामननात्" [शा० ४ पा० ४ सू० ११]

जैमिनि कहतेहैं ब्रह्मलोकप्राप्तिरूप मुक्तिमें इन्द्रियके सहित शरीरका भाव है कारण कि श्रुतियोंमें नानात्वभाव देखाजाता है "स एकधा भवति त्रिधा भवति पञ्चधा भवति" इत्यादि [छां० अ० ७] अर्थात् ब्रह्मलोकवासी मुक्त पुरुष एक तीन पांच सात आदि सहस्रोंरूप धारण करसकतेहैं इससे शरीर इन्द्रिय और मन उनमें तीनों हैं।

"द्वादशाहवदुभयविधं बादरायणोऽतः" [शा० अ० ४ पा० ४ सू० १२]

व्यासजी कहतेहैं जहां दो प्रकारकी श्रुति पाई जाय वहां विकल्प मान्ते जैसे द्वादशाहयागको दो प्रकारकी श्रुतिसे सत्रत्व और अहीनत्व कहाहै इसी प्रकार मुक्त पुरुष मनोमात्रशरीरी है और इच्छा करनेपर मन इन्द्रियशरीरयुक्तभी होताहै। संकल्पमात्रसे ही यह सब कुछ होजातेहैं इस स्थलमें देवता ऋषिगणभी प्रजापतिरूप हैं विधाताकी इच्छासे इनके हृदयमें सम्पूर्ण वेदमंत्रोंका आविर्भाव हुआ इसीसे इनको ऋषि अर्थात् मंत्रद्रष्टा कहते हैं यह ऋषि ब्रह्माकेही नियममें नियम्य है इनकी और ब्रह्माकी इच्छा अभिन्न है ब्रह्माकेही हृदयसे इनके मनोंमें वेदमंत्र प्रगट हुए ऋषियोंने मंत्रोंको प्रत्यक्ष करके मानसयागद्वारा ब्रह्माको परितृप्त किया उससमय ब्रह्माजीने यथोक्त सब मंत्रोंका प्रगटरूपसें उपदेश दिया, उन्होंने संकल्पशरीर होकर दूसरोंको उपदेश दिया इस प्रकार गुरुपरम्परासे जगतमें व्याप्तहुआ इसीसे इसको श्रुति कहते हैं [अर्थात् परंपरासे सुनाहुआ] इसीसे वेदको अपौरुषेय नित्य कहतेहैं यह अनादिसिद्ध ब्रह्मवाणी है। प्रश्न-यदि ऐसा है तो वेदमें अनेकऋषियोंके नाम क्यों पाये जातेहै यथा "त्रितः कूपेवहितो देवान् हवत ऊतये" [ऋ० मं० १सू० १०५ मंत्र १७] "त्वामद्यऋष आर्षेयऋषीणां नपात्" [यजु० २१। ६१] "त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्" [यजु०]। तथा अथर्व १८। ३ मं० १६ में सातों ऋषियोंके

नाम और ऋग्वेद १० मं० ५६ सू० बृहदुक्थ ऋषिका पुत्रको उपदेश देना लिखा है इस्से वेद उन उन कथाओंके पश्चात् निर्मित होना चाहिये । उत्तर–इनके होनेसे वेदके अपौरुषेयत्व होनेमें कुछ हानि नहीं पडती मनुष्यकी रचना अर्थको देखकर होतीहै और ईश्वरका ज्ञान त्रिकालमें एकरस है उसने जो कुछ लिखा है वैसा यदि न हुआ हो तो होकर रहताहै भूत भविष्य वर्तमान वेदसे सब कुछ जाना जाता है, दूसरे इन वेदके शब्दोंको देखकर ही उनके अनुसार ब्रह्माजीने सबका नाम-करण किया है यह शब्द दूसरे अर्थोंसे युक्तभी हैं तीसरे वेदकी कथा इतिहास नाम आध्यात्मिकभी हैं हितोपदेश करनेके निमित्त ऋषियोंके नाम अध्यात्मिक रूपसे कथन करके मनुष्योंको उपदेश दियेहैं यही बात जैमिनिने मीमांसामें और शवर मुनिने अपने भाष्यमें कथनकी है यथा "परं श्रुतिसामान्यमात्रम्" [जै० पा० १ सू० ९] "यत्परं ववरादिकं तच्छब्दसामान्यमेव नतु मनुष्यो ववर-नामकोऽत्र विवक्षितः ववरध्वनियुक्तस्य प्रवहणस्वभावस्य वायोरत्र वक्तुं शक्यत्वात्" अर्थात् वेदमें जहां "ववरः प्रावाहनिरकामयत" प्रवाहणगोत्रोत्पन्न ववरनामा ब्राह्म-णने इस प्रकार इच्छा की इस प्रकारका अर्थ मनुष्य अपने संस्कारानुरूप करतेहैं किन्तु वास्तविक देखनेसे यह अध्यात्मिक अर्थ है ववरध्वनियुक्त प्रवाहनि अर्थात् प्रवहनस्वभाव वायुका अर्थ होता है सिद्धान्तशिरोमणिके गोलाऽध्यायके वासनाऽध्यायमें सप्तविधि वायु लिखीहै "आवह, प्रवह, उद्वह, संवह, सुवह, वाह्य, परावह" इससे मंत्रब्राह्मणात्मक वेदमें इतिहासआध्या-त्मिक उपदेशपर तथा ईश्वरके त्रिकालज्ञानसूचक हैं और यह उपदेश कर-नेकी रीतिसे वर्णन किये हैं और वेदने इन वातोंकोभी खोल दियाहै "अहं सोस्मि" [ऋ० मं० १ सू० १०५ मं० १ । तथा ऋ० म० १ सू० १५८ मंत्र ६] दीर्घतमा इत्यादिकी व्याख्या देखो तथा निकाव्यवेधस [ऋ०१। १२ । १] इत्यादि देख-नेसे विदित होताहै कि वेद नित्य ब्रह्मसे आविर्भूत है, और कोई वेदका रचयिता नहीं है विस्तार न करके प्रस्तुत वर्णन करते हैं कि साध्य देव और मंत्रद्रष्टा ऋषि ब्रह्माके शरीरमें ही विद्यमान होतेहै ब्रह्मा उनको प्रगट करदेतेहैं और वेही उस यज्ञको करते अर्थात् उसके यजनद्वारा त्रिलोकीकी रचना करते हैं इस यज्ञके विना सृष्टिरचना नहीं होसकती, यह ब्रह्मलोकवासी मुक्त पुरुष ब्रह्माके साथ मुक्त होजाते हैं, जब कि वाह्य सामग्री नहीं थी तब देवता और साध्य तथा महर्षियोंने प्रथम मानसयाग करके सृष्टिकी उत्पत्ति की, और मुक्त पुरुषोंको सिद्धसंकल्प वर्णन किया, यथा "स यदि पितृलोककामो भवति, संकल्पादेवास्य पितरः समु-त्तिष्ठन्ति" छां० वह जैसी इच्छा करते हैं वैसाही उनके निकट उपस्थित होता है

पितृलोककी कामना करते ही पितृलोक उपस्थित होता है, "संकल्पादेव तु तच्छ्रुतेः" [शा० अ० ४ पा० ४ सू० ९] व्याससूत्रमें इसका विशेष रूपसे श्रीशङ्करस्वामीने भाष्य लिखा है. इसप्रकारसे साध्यगण देवगण ऋषिगण मानसयाग मनोमात्रशरीरसे सम्पादन करतेहुए पहले कहचुके हैं कि इनको सृष्टिक्षमताके सिवाय और सब सामर्थ्य होतीहै इसकारण सृष्टिरचनाके निमित्त उसका यजन करते हैं और यज्ञपुरुष ही सृष्टिकी रचना करते हैं अर्थात् सृष्टिरचनेकी सामर्थ्य केवल ईश्वरके ही हाथमें रहती है इस्से उनको यज्ञ करनाही होगा और यज्ञपुरुषसे सृष्टि करानीही होगी इसकारणही ऋषियोंने वेदमंत्रोंको प्रत्यक्ष मनोमय शरीरसे देखा तो परप्रकाश नहीं करसके यज्ञपुरुषसेही प्रगट कराये यह निरूपित हुआहै [ऋ० ८। ४। १७]॥ ९॥

कण्डिका १०-मंत्र १.

यत्पुरुषंव्यदधुःकतिधाव्यकल्पयन् ॥ मुखङ्किमस्यासीत्किम्बाहूकिमूरूपादाऽउच्येते ॥ १० ॥

ऋष्यादि-(१) ॐयत्पुरुषमित्यस्य नारायणऋ० । नि० छं० । पुरुषो देवता । वि० पू० ॥ १० ॥

मंत्रार्थः-प्रश्नोत्तररूपसे ब्राह्मणादिकी सृष्टि कहते हैं । प्रजापतिके प्राणरूप देवता तथा साध्यगणादि (यत्) जिस समय (पुरुषं) विराट् पुरुषको (व्यदधुः) संकल्पद्वारा प्रगट करतेहुए उससमय (कतिधा) कितने प्रकारसे (व्यकल्पयन्) कल्पना करते अर्थात् पूर्ण करतेहुए (अस्य) इस पुरुषका (मुखम्) मुख (किम्) क्या (आसीत्) हुआ (किम्) क्या (बाहू) भुजा (ऊरू) जंघा (पादौ) चरण (उच्येते) कहे जाते हैं ॥ १० ॥

विवरण-पहले सामान्य प्रश्न और मुखादि विशेष प्रश्नहैं अर्थात् देवगण सृष्टिके निमित्त मानसयाग विस्तार करके जिस समय निज अमोघ संकल्पद्वारा विराट् पुरुषको विराट्रूप (विराटशरीर) सृजन करते हुए उस समय यह विराट् कितने प्रकारसे पूर्ण हुआ,क्या पदार्थ उसका मुख बाहु ऊरू और चरण हुआ ॥ १० ॥

विस्तार-विराट् सृष्टिके मध्यमें भी दो अंश है प्रथम विराट् पुरुषकी उत्पत्ति दूसरी विराट्के विराजरूपकी उत्पत्ति, देवयोनिसे कृमिकीटपर्यन्त सब जीव एकत्र करके समष्टिचैतन्य अर्थात् विराट् पुरुष कहाते हैं, और देवयोनिसे कृमि कीटयोनिपर्यन्त जीवोंके स्थूल शरीर एकत्र करके विराजरूप कहाते हैं; वेदान्तमें

इसीकारण विराट् पुरुषको समष्टि चैतन्य और जीवपुरुषको व्यष्टिचैतन्य कहा जाता है, इसमें विराट् पुरुषका आविर्भाव, "ततो विराडजायत" इस मंत्रमें कथन कर चुके हैं इस समय इस मंत्रमें विराट् शरीर [विराजरूप] की उत्पत्तिविषयमें कुछ कहेंगे, अगले मंत्रोंमें उत्तररूप उसकी वर्णना कहीहै, यह वर्णना अतिविचित्र है, एक ओर तो विराट् पुरुषके अंग प्रत्यंग वर्णन करदिये हैं, दूसरी ओर उसी वर्णनासे सब जगतकी सृष्टि कथन करदी है, लोकशिक्षाके निमित्त वेदपुरुष स्वयंही प्रश्नकरता और उत्तरदाता है, मंत्रके प्रथमार्धमें सामान्य प्रश्न और द्वितीयार्द्धमें विशेषरूपसे चार प्रश्न हैं इसमें प्रथमार्द्धका उत्तर १२। १३ वे मंत्रमें दिया है और चार प्रश्नोंका विशेषरूप उत्तर ११ मंत्रमें दियाहै विराज पुरुष कितने प्रकारमें पूर्णहुआ यही जिज्ञासाके संकेत हैं विराट्पुरुष जीवन अर्थात् समष्टिचैतन्य पुरुष उसका हमसरीखे जीवगणोंकी समान वास्तविक लिङ्गशरीर और स्थूल शरीर नहींहैं, देवताओंने मानसयागमें उसकी पशुत्वकल्पना की है विना अभिमानके पशुभाव नहीं होसकता, अभिमानके विना लिङ्गशरीर नहीं होता लिङ्गशरीरविना स्थूल शरीर नहीं होता, इससे विराट्को पशुत्वकल्पना करनेमें इन सबकी आवश्यकता है अर्थात् उसका अभिमान लिङ्गशरीर स्थूलशरीर सबही चाहिये, इस प्रकार मानसयागमें यजनके निमित्त कल्पना रूपकद्वारा कथन किया है, विराट्की कितने प्रकारसे पूर्णता हुई इसके मर्ममें पशुकल्पना करनेमें लिङ्गशरीर और स्थूलशरीरकी आवश्यकता है, इस कारण उसके अभिमानसम्पादनार्थ किस २ वस्तुको लिङ्गशरीररूप और किस पदार्थको स्थूलशरीररूपसे भावना की है देवताओंकी इस इस भावना वा कल्पनाके द्वारा उस उस उत्पन्न पदार्थके अधिष्ठात्री देवता वही २ वस्तुरूप होगये; देवताओंने भावना की मन उसका चन्द्रमा हो बस मनकी अधिष्ठात्री देवता चन्द्रमा हुआ, सूर्य चक्षु हो बस चक्षुकी अधिष्ठात्री देवता सूर्यरूप हुआ वह सिद्धसंकल्प हैं इससे उसका संकल्प अमोघ और विचित्र है इसीसे वह यही रूप हुआ, हमारे अन्तर्याग अर्थात् मानसपूजामें रूपकल्पना चाहें जितनी हो चित्तकी शुद्धिमात्र होतेही फल अवश्य होगा, किन्तु उक्तरूप कल्पित पदार्थ कभी अधिष्ठातृदेवतारूपमें परिणत नहीं होते यही देवताओंकी और हमारी मानस-

---

१ वेदमें प्रायशः आविर्भावस्थलमें उत्पत्ति और उत्पत्तिस्थलमें कल्पना शब्द आयाहै, इसका कुछ गूढ तात्पर्य है अर्थात् उत्पत्ति कदाचित् मायासे कल्पित सत्य नहीं इस निमित्त कल्पना क्लृप धातुका प्रयोग दियाहै और आविर्भाव सत्यवस्तुका होताहै यह जानो और इस निमित्त आविर्भावस्थलमें उत्पत्तिका व्यवहार है इस प्रयोजनीय वार्ताको ध्यानमें रखना चाहिये।

पूजामें विभिन्नता है यह लिङ्गशरीरविषयक प्रश्न हुआ, स्थूल शरीरमें श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, नासिका यह पांच ज्ञानेन्द्रिय, वाक्, हस्त, पाद, पायु, उपस्थ, यह पांच कर्मेन्द्रिय, यह दश और प्राण अपान समान उदान व्यान यह पांच प्राण, प्राणका स्थान हृदय, अपानका गुह्यमें, समानका नाभिदेशमें, उदानका कण्ठ-कूपमें, व्यानका स्थान समस्त शरीर अर्थात् त्वचाके समस्त निम्नभागमें है सम्पूर्ण इन्द्रियोंका अध्यक्ष मन सबकी करनेवाली बुद्धि इन १७ समष्टिको लिङ्गशरीर कहते हैं सामान्य प्रश्नमें इसी १७ की जिज्ञासा थी अर्थात् श्रोत्र क्या है त्वक् क्या है ७ विशेष प्रश्नमें स्थूल शरीरके चार प्रधान अंशमात्र ग्रहण किये हैं [ऋ० ८।४।१७] "किं बाहू किमूरू" के स्थानमें "कौ बाहू का ऊरू" पाठ है॥१०॥

कण्डिका ११-मंत्र १.

ब्राह्मणोऽस्यमुखमासीद्वाहूराजन्यः कृतः॥ ऊरू तदस्ययद्वैश्यः पद्भ्याᳬशूद्रोऽअजायत॥ ११॥

ऋष्यादि-(१) ॐब्राह्मणोस्येत्यस्य विनियोगः पूर्ववत्॥ ११॥

मन्त्रार्थः-(ब्राह्मणः) ब्राह्मणत्वजातिविशिष्ट पुरुष (अस्य) इस प्रजापतिका (मुखम्) मुख (आसीत्) हुआ, अर्थात् मुखसे उत्पन्न हुआ(राजन्यः)क्षत्रियत्वजाति-विशिष्ट पुरुष (बाहू कृतः) बाहुरूपसे निष्पादित हुआ अर्थात् भुजाओंसे प्रगट हुआ, (अस्य) इसकी (यत्) जो (ऊरू) जंघा है (तत्) वह (वैश्यः) वैश्य हुआ (पद्भ्याम्) चरणोंसे (शूद्रः) शूद्रजातिविशिष्ट पुरुष(अजायत) उत्पन्न हुआ मुखादिसे ब्राह्म-णोंकी उत्पत्ति कृ० यजुः सप्तम काण्डमें लिखी है "स मुखतस्त्रिवृतं निरमिमीत" तथा "तिसृभिरस्तुवत ब्रह्मासृज्यत" [१४।२८ यजु०] इस प्रकार स्पष्ट लिखी है इसीसे सायणाचार्य और महीधरने इसीप्रकार अर्थ किया है॥ ११॥

विस्तार-यह पहले कथन कर चुके हैं कि पुरुषसूक्तमें अद्भुत रूपसे रचना की गई है एक ओर तो पुरुषमेध यज्ञ है दूसरी ओर सृष्टिका वर्णन है इस कारण दोनों विधान इसमें प्रत्यक्षरूपसे लक्षित होते हैं "ब्रह्मणे ब्राह्मणं" २९। ९ मंत्रसे अन्तपर्यन्त सम्पूर्ण जातियोंका प्रायः वर्णन किया गया है और पुरुषमेधमें प्रायः सब जातिके पुरुष बैठते हैं इनका विराट् रूपसे पूजन होता है प्रजापतिके अंगोंकी कल्पना होती है अर्थात् ब्राह्मण उसके मुखरूप क्षत्रिय उसके भुजारूप वैश्य उसके ऊरुरूप और शूद्र उसके चरणरूप हैं वा ब्राह्मण मुखके अधिष्ठातृ, क्षत्रिय भुजाके अधिष्ठातृ, वैश्य ऊरुयुगलके अधिष्ठात्री देवता हुई शूद्र चरणोंके अधिष्ठात्री

देवता हुई अर्थात् देवगणने मानसयागमें निर्गुण पुरुषरूप भित्तीसे विराट् पुरुषरूप चित्र दर्शन करके ब्राह्मणादि चार वर्णोंका चार अंगोंसे प्रादुर्भाव देखकर उनका वर्णरूपसे विस्तार किया, लिङ्गशरीर हिरण्यगर्भरूप है सो पूर्व कहचुके हैं इस मंत्रमें चार वर्णद्वारा विराटकी स्थूल मूर्ति कथन की हैं, ब्राह्मणोंकी सृष्टि ब्रह्मतेजयुक्त हुई है तेजको अग्निभी कहते हैं इस कारण ब्राह्मण और अग्नि दोनोंकी सृष्टि मुखसेही है यथा [मुखादग्निरजायत] मुखसे अग्नि उत्पन्न हुई, यह अगले मंत्रमें कहा है क्षत्रियत्वतेज भुजास्वरूप है इससे उसे क्षत्रिय हुआ इसी प्रकार व्यवसाय और सेवकत्व उसके उरूऔर चरणोंमें स्थित होनेसे उसे शेष दो वर्ण हुए इसप्रकारसै पुरुषमेधमें सृष्टिरचनापक्षमें यह विचार करना चाहिये कि ब्राह्मणादि चारों वर्ण उससे प्रगट हुएहैं या नहीं और यह कर्मपरत्व है वा जन्मसे सब विचार करनेसे जाना जाताहै कि जिसप्रकार पूर्वजन्मके कर्मानुष्ठानसे ब्रह्माजीने महर्षियोंको उत्पन्न किया, इसी प्रकार प्रलयसे पूर्वमें जिनके पूर्वोपार्जित कर्म ब्राह्मण होनेके थे वह ब्राह्मण जिनके क्षत्रिय होनेके थे वे क्षत्रिय इत्यादि हुए, इस स्थलको विचारनेसे देखा जाताहै कि प्रथम ब्राह्मणादिकी उत्पत्ति जातिपरत्व ही विदित होतीहै यदि कर्मपरत्व होतीहै तो उससे ब्राह्मणत्व क्षत्रियत्व वैश्यत्व शूद्रत्व हुआ इस प्रकार वेद लिखता, परन्तु वैसा न कहकर स्वच्छ ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र चारोंकी उत्पत्ति लिखी है, यदि कहो कि इसमें पंचमी विभक्ति नहीं है केवल 'पद्भ्यां' इसमेंही पंचमी विभक्ति दीखतीहै, तो इसका उत्तर यह है कि पुरुषमेधमें प्रजापतिके अंगोंकी कल्पनासे प्रथमा विभक्तिका निर्देश किया है और सृष्टिरचना ब्राह्मणादि उसीसे प्रगट हुए हैं इस अर्थके स्पष्ट दिखानेके निमित्त चौथे पदमें पंचमीविभक्ति लिखी है, यदि कहो कि तीन वर्णमें तौ पंचमी नहीं है केवल चतुर्थही वर्णमें है तो हम शूद्रकी ही उत्पत्ति चरणोंसे मानेंगे औरोंकी नहीं तब यह विचारना चाहिये कि इस स्थलमें प्रायः समस्त जगतकी रचना कीगई है चन्द्र सूर्य तारा आरण्य वनके पशु भूमि अन्तरिक्षआदि और जो जिस अंगसे हुए वहभी प्रायःप्रतिपादन किया है, तब यदि तीन वर्णकी कल्पनामात्र मानोगे तौ यह तीन वर्ण कहांसे आगये, यदि स्वतः होगये तौ ईश्वरकी ईश्वरतामें भेद पडता, और चारों वर्णोंका ईश्वरद्वारा प्रगट होना १४अ०के२८ । २९ । ३० मंत्रोंमें चारों वर्णकी रचना कह चुके हैं, अब यह इस मंत्रमें स्पष्ट करते हैं कि कौन किस अंगसे प्रगट हुआ है, फिर कृष्ण यजुके सातमें काण्डमें स्पष्ट ब्राह्मणादिकी उत्पत्तिविषयमें पंचमी विभक्ति पडी है, इसकारण यह इन्ही अंगोंसे सिद्धसंकल्परूपसे प्रगट हुए, यदि पीछे कर्मोंसे ब्राह्मणादि हुए, तौ केवल ऐसाही प्रयोग होता कि उससे मनुष्य जाति हुई

परन्तु ऐसा न कहकर चार नाम ग्रहण करनेसे इसमें वर्णाश्रमधर्मकाभी आशय सम्मिलित किया दीखता है, इसकारण संस्कारयुक्त ब्राह्मणादि जाति उससे प्रगट हुई इससे यह चारों वर्ण जातिवाचक हैं कर्मवाचक नहीं है, अब इसपर दूसरे शास्त्रकेभी प्रमाण लिखतेहैं जिस्से स्पष्ट होताहै कि यह जातिपरत्व है और उसके अंगोंसे उत्पन्न हुए हैं "लोकानां तु विवृद्ध्यर्थं मुखबाहूरुपादतः। ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रञ्च निरवर्तयत्" [मनु० अ० १ श्लो० ३१] लोकोंकी वृद्धिके निमित्त मुख बाहु ऊरू चरणोंसे उसने चारों वर्णोंकी रचना की यहां सबका एक समास करके पंचमीविभक्ति सबके साथमें निरूपण कीहै, जब कि यहां सृष्टिरचनामें पंचमी विभक्ति है तब क्यों न मंत्रका आशय यथायोग्य मानाजाय फिर मनुजी लिखतेहैं " वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्निषेकादिर्द्विजन्मनाम्। कार्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च॥ २६ ॥ नामधेयं दशम्यान्तु द्वादश्यां वास्य कारयेत्। पुण्ये तिथौ मुहूर्ते वा नक्षत्रे वा गुणान्विते॥३०॥शर्मवद्ब्राह्मणस्य स्याद्राज्ञो रक्षासमन्वितम्। वैश्यस्य पुष्टिसंयुक्तं शूद्रस्य प्रेष्यसंयुतम्॥३२॥" [अ० २।] "शर्म ब्राह्मणस्य। वर्म क्षत्रियस्य। गुप्तेति वैश्यस्य" [आश्वलायन०] पवित्र वैदिककर्मोंसे ब्राह्मणादि तीनों वर्णोंका संस्कार करना यह विधि पवित्र पापनाशक और दोनो लोकमें पवित्रताका हेतु है। ब्राह्मणादि वर्णोंका नामकरण दसवें वा बारहवें दिन अच्छी तिथिमुहूर्त नक्षत्रमें करना चाहिये ब्राह्मणका शर्मयुक्त क्षत्रियका रक्षा (वर्म) युक्त वैश्यका पुष्टि (गुप्त) युक्त और शूद्रका दासत्वविशिष्ट नाम रखना चाहिये। यही आश्वलायनमें लिखाहै अब विचारनेकी बात है यदि ब्राह्मणादिवर्ण कर्मपरत्व हों तो उनका संस्कार जन्मसे न होनाचाहिये न ब्राह्मणत्वगुणविशिष्ट नाम रखना चाहिये क्योंकि अभी तो यह विदितही नहीं कि वह किस वर्णमें प्रविष्ट हो यादि शूद्रकेसे कर्मकिये तो संस्कारही नष्ट होजायगा इस्से पहले ब्राह्मण जातिही है पीछे उसके संस्कार होतेहैं पश्चात् कर्मोंका उपदेश होताहै आगे " अष्टमे वर्षे ब्राह्मणमुपनयीत गर्भाष्टमे वा। एकादशे क्षत्रियम् द्वादशे वैश्यम्" [आश्वला०] "गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम्। गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः" [मनु०] आठवे वर्षमें ब्राह्मणका ग्यारहवेमें क्षत्रियका बारहवेमें वैश्यका यज्ञोपवीत करै. यहांभी यही निर्णय है कि यह सब कर्म जातिपरत्वही निर्णीत हुए हैं। "वसन्ते ब्राह्मणमुपनयीत ग्रीष्मे राजन्यं शरदि वैश्यम्" [शतपथ०] वसन्तमें ब्राह्मण ग्रीष्ममें क्षत्रिय शरदमें वैश्यका यज्ञोपवीत करै। यहांतकभी जातिपरत्वही संस्कार हुएहैं आगे मनुजीने तीनों वर्णकी मुंज मेखलाभी पृथक् २ ही प्रतिपाद नकिये हैं–

"अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा ।
दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ॥" मनु ॥ १ ॥
"शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च ।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥" गीता ॥ २ ॥
"प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च ।
विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः ॥" मनु ॥ ३ ॥
शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम् ।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रकर्म स्वभावजम् ॥" गी० ॥ ४ ॥
"पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च ।
वणिक्पथं कुसीदञ्च वैश्यस्य कृषिमेव च ॥" मनु ॥ ५ ॥
"कृषिगोरक्षवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम् ॥" गी० ॥ ६ ॥
"एकमेव हि शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत् ।
एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया ॥" मनु ॥ ७ ॥
"परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् ॥" गी० ॥ ८ ॥

वेद पढना पढाना यज्ञ करना कराना दान लेना देना यह कर्म ब्राह्मणके निमित्त प्रभुने कल्पना किया ॥ १ ॥ गीतामें शान्ति, दम, तप, शौच, क्षान्ति, सीधापन, ज्ञान, आस्तिकता, यह ब्राह्मणका स्वाभाविक कर्म है ॥ २ ॥ प्रजाकी रक्षा, दान, वेदपाठ विषयोंमें अनासक्ति यह कर्म संक्षेपसे क्षत्रियोंके निमित्त है ॥ ३ ॥ शूरता तेज धैर्य युद्धसे न भागना दान करना ईश्वरभाव यह क्षत्रियोंका स्वाभाविक कर्म है ॥ ४ ॥ पशुओंका रक्षण दान वेद पढना व्यापार व्याज लेना और कृषि-कर्म वैश्योंके निमित्त कल्पना किया है ॥ ५ ॥ कृषि गोरक्षा वाणिज्य करना यह वैश्यका स्वाभाविक कर्म है ॥ ६ ॥ इन तीनो वर्णोंकी असूयारहित सेवा करना शूद्रका कर्म है ॥ ७ ॥ परिचर्या शूद्रमें स्वाभाविक होतीहै ॥ ८ ॥ अब विचार-नेकी वात है मनुजीने यह कर्म ब्राह्मणके वास्ते निरूपण किये. यह नहीं लिखा कि इन कर्मोंसे ब्राह्मण होताहै. इससे सिद्ध है कि यह चारों वर्ण जातिपरत्वही हैं. जब की तीनो वर्ण वेद पढे होतेथे तिसपरभी पढाना ब्राह्मणहीको कहा इससेभी ब्राह्मणमें विशेषता जातिसे प्रतिपादन की है जो तप और विद्याही न हो उसके आच-रण ब्राह्मणकेसे नहीं है तमसे उसका स्वभाव आच्छादित होगयाहै परन्तु जातिसे वह ब्राह्मण होता है यह महाभाष्यमेंभी कहा है यथा-

"तपः श्रुतं च योनिश्च ह्येतद्ब्राह्मणकारकम् ।
तपःश्रुताभ्यां यो हीनो जातिब्राह्मण एव सः ॥"

तप, ब्रह्मचर्य शास्त्र, और योनि यह ब्राह्मणका कारण है, जो तप और शास्त्रसे हीन है वह जातिसे ब्राह्मण है इससे स्पष्ट है कि जातिसे ब्राह्मण रहता है, यदि योनिसे ब्राह्मण न हो और तप ब्रह्मचर्य तथा शास्त्रयुक्त हो तौ वह ब्राह्मण नहीं होसक्ता, तौ जिसके होनेसे जो रहै और जिसके नहीं होनेसे जो न रहै वही उसका मुख्य लक्षण है और जो कहते हैं "ब्रह्मणा पूर्वसृष्टं हि कर्मणा वर्णतां गताः" इसका यही आशय है कि ब्रह्माद्वारा सर्वजगत्‌की उत्पत्ति है इससे सब जगत् ब्रह्ममय कहाता है; और ब्राह्मणादिका जन्म पूर्वजन्मके कर्मानुसार हुआ है जिसका जिस योनिमें कर्मवश जन्म है उस दशामें वह बदल नहीं सकता, गेहूं चना जैसे नहीं होसकता चाहै घुन गया हो, इसीप्रकार ब्राह्मण शूद्र नहीं होसका चाहै बेपढा हो मनुजी स्पष्ट [अ० १० श्लो० १३] में कहते हैं ॥

"अनार्यमार्यकर्माणमार्यश्चानार्यकर्मिणम् ।
संप्रधार्याब्रवीद्धाता न समौ नासमाविति ॥" मनुः ॥

शूद्र द्विजातिके कर्म करके भी इस जन्ममें द्विजाति नहीं होसकता, और द्विजाति शूद्रकेसे कर्म करकेभी शूद्र नहीं होता, परन्तु मानसे ब्राह्मणोंमें अधः होजाता है अधिक विस्तार करनेसे वढाजाता है विशेष जिसे देखना हो हमारे निर्मित किये दयानन्दतिमिरभास्करके चौथे समुल्लास वर्णव्यवस्थाप्रकरणमें देखलो जिससे जो जन्मताहै वही उसका अधिष्ठातृ देवता है जैसे ब्रह्मसे आकाश हुआ तो इसके अधिष्ठात्रीदेवता ब्रह्म है और ब्रह्ममेंही वह अवस्थान करताहै. इसीप्रकार अग्नि वायु आदिको जानिये "वायोरग्निः" वायुसे अग्नि हुई उसकी अधिष्ठात्री देवता वायु है इसीसे अग्निको वायुसखा कहाहै. इसीप्रकार औरभी जानो कर्मदेवता संचित और प्रारब्ध इन दो भेदसे मुख्य है पूर्वजन्मार्जित कर्मफलसे जिस शरीरकी गढन हुई है, वह शरीरके सहजन्मा होकर मरणसमयतक शरीरके साथ रहते हैं, इन्हीं अधिष्ठातृ कर्मको संचित देवता कहते हैं जीवकी ग्यारह इन्द्रियोंके अधिष्ठातृ यह संचित देवता हैं और जो शरीरपरिग्रहउपरान्त वेदादिसंस्कार श्रेष्ठकर्म उसमें अवस्थानकरते हैं, वह प्रारब्धद्वारा प्राप्त होते हैं, जैसे कोई महामूर्ख दैवात् विद्वान् होजाय, और निर्धन धनी हो जाय इसीप्रकार पुरातन कर्मसे जिसका शरीर ब्राह्मणके वीर्यसे गढन हुआ है वह उसका गढन मरणपर्यन्त रहैगा, इसका वेदादिसंस्कार और कर्मविशेष आगन्तुक है, मनुष्य अपने कर्मसे अलंकृत होजाता है, जो होता है वह उसका तिरोभाव नहीं होता, मनुष्यके अधिष्ठातृ इन्द्रियोंके देवतामें जो जागृत होता है वह उसमें विशेष लक्षित होता है, जैसे जिसका इन्द्र देवता जागृत हो वह बड़ा दाता होता है, जो उदार मन सुन्दररूप हो उसका चन्द्र देवता जागृत है, जिसमें

कुकर्म दीखे उसका पाप देवता जागृत है, और जो वेदशास्त्रसम्पन्न शौचाचारपरायण धर्मयुक्त वेदपाठनिरत हो उसका ब्रह्मण्यदेव जागृत है यह जान्ना चाहिये, परन्तु जो जिस योनिसे प्रगट है वह परिवर्तन नहीं होसक्ता इससे ब्राह्मणादि जाति है यह सिद्ध है अलमतिविस्तरेण [ऋ० ८ । ४ । १७] ॥ ११ ॥

कण्डिका १२-मंत्र १.

चन्द्रमा॒मन॑सो जा॒तश्चक्षोः॒ सूर्यो॑ऽअजायत ॥ श्रोत्रा॑द्वा॒युश्च॑ प्रा॒णश्च॒ मुखा॑द॒ग्निर॑जायत ॥ १२ ॥

ऋष्यादि-(१) ॐचन्द्रमाइत्यस्य नारायणऋ० । आर्ष्यनुष्टुप्छन्दः । पुरुषो देवता । वि० पू० ॥ १२ ॥

मंत्रार्थः-जैसे गौआदि ब्राह्मणादि उससे उत्पन्न हुए हैं इसीप्रकार उसके (मनसः) मनसे (चन्द्रमाः) चन्द्रमा (जातः) प्रगट हुआहै (चक्षोः) चक्षुओंसे (सूर्यः) सूर्य (अजायत) प्रगट हुआहै (श्रोत्रात्) श्रोत्रसे (वायुः) वायु (च) और (प्राणः) प्राण प्रगट हुए (च) और (मुखात्) मुखसे (अग्निः) अग्नि (अजायत) प्रगट हुई ॥ १२ ॥

विशेष-यह जो अग्नि वायु सूर्य चन्द्रमा लक्षित होतेहैं इनमें चेतनता है वा नहीं इसका विचार इसप्रकार जान्ना कि इनमें अधिष्ठित होकर विराट्का अंश (शक्ति) चेतन वस्तु है, जिसको चन्द्र कहते हैं वह चन्द्र देवताके रहनेका एक प्रधान गोलक है, इसीप्रकार दृश्यमान सूर्य अग्निभी सूर्य और अग्नि देवताके रहनेके प्रधान स्थान है, इसीप्रकार सब देवताओंमें जानलेना, इन सम्पूर्ण देवताओंके प्रधानस्थान एक २ गोलक होकरभी इनके सम्पूर्ण अंश अपने २ कारणस्थानमें अधिष्ठातृ देवता होकर अवस्थान करते हैं जिसप्रकार जल प्रधान स्थान समुद्र होकरभी उसके किंचित् २ अंश सब जीवोंमें हैं, इसीप्रकार विराटके मनसे समष्टि चंद्र हुआ उसके कुछ २ अंश कारणस्थान मनमें स्थित हो अधिष्ठातृदेवतारूपसे अवस्थान करते हैं. अधिष्ठातृ देवता ही अधिष्ठानका चालक होता है । इसी प्रकार सूर्यकाभी प्रधानस्थान यह दृश्यमान सूर्यलोक वा सूर्यगोलक होकर भी उसके किंचित् अंश हमारे चक्षुमें आकर अधिष्ठातृदेवतारूप होकर रहतेहैं जिससे हम देखतेहैं अंधेका अधिष्ठातृ देवता विदारूप है इसी प्रकार अग्नि देवताका प्रधान स्थान अन्तरिक्ष द्यु और जठर यह तीन हैं तो भी अपने किंचित् अंशसे अपने कारणस्थान हमारे मुखमें अवस्थित वागिंद्रिय) में स्थित होकर अधिष्ठातृदेवता होकर अवस्थान

करते हैं, इसी प्रकार सम्पूर्ण देवताओंमें जान्ना मंत्रब्राह्मणमें जहां "मृदब्रवीत्" "आपोऽब्रुवन्" ऐसा आताहै वा "ते हेमे प्राणा अह श्रेयसे विवदमाना ब्रह्म जग्मुः" [कौषीतकी०] वे प्राणादिक अपनी श्रेष्ठता सम्पादन करते प्रजापतिके समीप जाकर कहनेलगे ऐसे स्थलोंमें यही जान्ना कि यह जड़के सम्बोधन नहीं, किन्तु उनके अधिष्ठातृदेवता है, सो प्रारंभमेंभी कहचुके हैं [ऋ० ८। ४। १७] पिछला आधा " मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत " ऐसा है ॥ १२ ॥

कण्डिका १३-मंत्र १.

नाभ्याऽआसीदन्तरिक्षꣳशीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत ॥ पद्भ्याम्भूमिर्द्दिशꣳश्रोत्रात्तथा लोकाँ२ऽअकल्पयन् १३

ऋष्यादि-(१)ॐनाभ्याइत्यस्य विनियोगः पूर्ववत् ॥ १३ ॥

मन्त्रार्थः-(नाभ्याः) नाभीसे (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष (आसीत्) हुआ (शीर्ष्णः) शिरसे (द्यौः) स्वर्ग (समवर्तत) प्रगटहुआ (पद्भ्याम्) चरणोंसे (भूमिः) पृथ्वी (श्रोत्रात्) श्रोत्रसे (दिशः) सम्पूर्ण दिशा उत्पन्न हुई (तथा) उसीप्रकार (लोकान्) भूरादि लोकोंको (अकलपयन्) पूर्वोक्त कल्पना करतेहुए वा विराट्के देहसे कल्पना करतेहुए ॥ १३ ॥

विशेष-अन्तरिक्ष देवताका प्रधान द्वार अन्तरिक्ष लोक है तो भी उसका किंचित् अंश हम जीवगणोंके नाभिस्थानमें रहकर शरीरगोलकका केन्द्ररूप हुआ है, मस्तक द्युलोक इसके कहनेसे प्रकाशात्मक देवताका बोध जान्ना मस्तिष्कमें वह प्रकाशात्मक देवता होकर अवस्थान करते हैं यह देवता यदि क्षणमात्रको भी तिरोधान होजाय तो शरीरमें स्थित रक्तकणिका और धमनी सब अबल होने और रुधिरके जमजानेसे तत्काल जीवन मूर्छा और अन्धकारसे व्याप्त होजाय, यदि यह द्युदेवता पुनर्वार आगमन न करे तो फिर जीवन नहीं होता मृत्यु होजातीहै, योगीजन चक्षु मूंदकर भ्रूमध्यमें इसी किरणका दर्शन करते हैं, वह किरण इस दिवदेव देवताके मस्तिष्कसे आई प्रकाशमात्र है जिनके मस्तकसे यह क्षण क्षणमें आविर्भाव और तिरोभाव होता है वह पुरुष अस्थिरमति और सम्पूर्ण कार्यमें भ्रान्त होताहै, उन्माद इसकाही प्रधान कारण है। यह मस्तकका अधिष्ठातृ देवता है प्रगट और तिरोहित होताहै। चरणोंसे भूमि हुई भूमिको आधारशक्ति जान्ना, आधारशक्ति और भूमि एकही बात है भूमि देवता अपने कारण पादयुगलमें किंचित् अवस्थित हुई हैं इसीसे दोनों चरणोंमें सब शरीरोंके वहन करनेकी सामर्थ्य है, यदि भूमिदेवता चरणोंसे क्षण कालकोभी

तिरोहित होवे तो यह शरीर गिरजाय अतिशैशव और अतिवार्धक्य यह इन दो पादमें गूढ भावसे अवस्थान करतेहैं श्रोत्रसे १० दिशा हुईं दिग्देवता अपने कारण श्रोत्रइन्द्रियमें कुछ अंशसे स्थित होकर अधिष्ठातृदेवतारूपसे विराजते हैं हम देखते हैं किसी दिशामें हम अपने करण स्थापन करें सब ओर सुनेंगे इसका कारण क्या ? यह सब दिशाओंमें व्यापी दिग्देवताका अधिष्ठानमात्रही इसका कारण है [ऋ० ८।४। १७] ॥ १३ ॥

कण्डिका १४-मंत्र १.

यत्पुरुषेणहविषादेवायज्ञमतन्वत ॥ वसन्तोस्यासीदाज्ज्यंग्ग्रीष्म्मऽइध्मःशरद्धविः ॥ १४ ॥

ऋष्यादि-(१) ॐयत्पुरुषेणेत्यस्य नारायणऋषिः। निच्यृदार्ष्यनुष्टुप्छं०। यज्ञो देवता। वि० पू० ॥ १४ ॥

मन्त्रार्थः-(यत्) जिस समय पूर्वोक्त क्रमसे देवशरीरोंके होनेपर (देवताः) देवताओंने उत्तर सृष्टिके सिद्ध करनेके निमित्त बाह्यद्रव्यके उत्पन्न न होनेके कारण पुरुषस्वरूपकोही मनसे हविद्वारा संकल्पकर (पुरुषेण) उस पुरुषरूप (हविषा) हविद्वारा (यज्ञम्) मानस यज्ञको (अतन्वत) विस्तारकिया (वसन्तः) उस समय वसन्तऋतु (अस्य) इस यज्ञकी (आज्यम्) घृतरूप कल्पना (आसीत्) हुई (ग्रीष्मः) ग्रीष्मऋतु (इध्मः) समिध और (शरत्) शरदृऋतु (हविः) हवि (आसीत्) हुई । प्रथम पुरुषकी हवि सामान्यरूपसे संकल्प करके फिर वसन्तादिका आज्यविशेषरूपसे कल्पना कियाहै यजुमें कण्डिकाव्यत्यय है ऋक्में इसके उपरान्द तं यज्ञम् ९ फिर तस्माद्यज्ञात् ६ फिर सप्तास्यासन् हैं ॥१४॥

विस्तार-देवगणसे यहां साध्यगण और ऋषियोंका अर्थ जानना तैत्तिरीयके सप्तम प्रपाठकमें है "बर्हिषा वै प्रजापतिः प्रजा असृजत" इत्यादि अर्थात् देवताओंने जिस समय प्रजापतिको हविरूप कल्पना किया उन्होंने उसी समय सिद्ध संकल्पसे कहा वा इच्छा की कि मैं इस समय देवगणोंके मानसयागका हविस्वरूप हूं इस कारण विविध प्रजावान् होऊं उस समय तत्क्षण प्रजापतिने सब प्रजाकी सृष्टि की इस प्रकार देवगणके मानसयज्ञमें इस यज्ञपुरुषसे सब प्रजाकी सृष्टि हुई है देवगण साध्यगण मंत्रद्रष्टा ऋषिगण हुए जिनकी सृष्टि पीछे कहचुके हैं यज्ञके विना सृष्टि नहीं इस कारण यज्ञके निमित्त सब जगत्की सृष्टि हुई है ब्रह्मसे ब्रह्माण्ड और उसके अभिमानी विराट् पुरुषने प्रगट होकर अपना शरीर कम्पित

किया और उससे उसी समय सिद्ध देवगण तथा ब्रह्माके साथ मुक्त होनेवाले ऋषिगण प्रगट हुए "स तपस्तप्त्वा शरीरमधूनुत तस्य यन्मांसमासीत् ततोऽरुणाः केतवो वातरशना ऋषय उदतिष्ठन् ये नखाः ते वैखानसाः ये वालाः ते वालखिल्याः यो रसः सोऽपाम् (कूर्मोभूत्) अन्तरतः कूर्मं भूतं सर्पन्तं तमब्रवीत्" इत्यादि [तैत्तिरीयारण्यक प्र० १। अनु० २३] अर्थात् प्रजापति सृष्टि करनेके निमित्त रचनायोग्य सब वस्तु इस प्रकारसे होगी ऐसा स्थिर करके अपने शरीरको कंपित करतेहुए उसी क्षण मांससे अरुणकेतु और वातरशननामक ऋषिगण प्रकाशित हुए नखसे वैखानसनामक ऋषिगण प्रगट हुए वालसे वालखिल्य ऋषिगण प्रगट हुए, तिनके शरीरकी रस धातुसे कूर्म (कच्छपशरीर पुरुष) प्रादुर्भूत होकर उसी समय उस (कूर्मपुरुष) ने उसी एकार्णव जलसमूहके मध्यमें प्रविष्ट होकर विचरण किया, विधाता उसको विचरता देखकर कहनेलगे इत्यादि देवताओंके पास इस यज्ञ करनेकी कोई सामग्री न थी इस कारण उन्होंने मानसयज्ञ वा अन्तर्यागका विस्तार किया, यह जानना चाहिये। इसीसे वाह्य पूजासे मानस पूजाको प्रधान कहा है, मानसपूजाके विना पूजाकी विधि सिद्ध नहीं होती जाबाल उपनिषदमें तीर्थवासमें यही लिखा है बाह्यमें जितने तीर्थ देखेजाते हैं यह अन्तरके तीर्थ देखकरही निर्मित हुए हैं अन्तरकाशीमें जिसकी मृत्यु हो उसको बाह्य वाराणसीकी अपेक्षा नहीं है बाह्य तीर्थोंका सेवन अन्तर तीर्थकी सहायता प्रकाशताके निमित्त है बाह्य तीर्थोंमें रहकर ऋषियोंने अन्तर तीर्थकी पुष्टि की है। देवताओंने ऋतुओंको यज्ञकी एक २ वस्तु कल्पना किया है इसका आशय यह है वसन्त ऋतु घृतस्थानीय की है इसी कारण वसन्त ऋतु सदाही जीवोंको घृततुल्य आयुकी वृद्धि वा शरीरपोषण करती है। ग्रीष्म ऋतु काष्ठस्थानीय की है इसीकारण सदा इस ऋतुमें हमारा शरीर सूखे काष्ठकी समान नीरस होजाता है; शरदऋतुको पुरोडाशस्थानीय कियाहै अबभी यह ऋतु हमारा अपाच्य होकर रहतीहै अर्थात् शरद ऋतुमें भोजनका शीघ्र पाक नहीं होता [ऋ० ८।४।१७] ॥ १४ ॥

कण्डिका १५--मंत्र १.

सप्तास्यासन्परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः ॥
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन्पुरुषं पशुम् ॥ १५ ॥

ऋष्यादि-(१) ॐसप्तास्येत्यस्य नारायणऋषिः। अनुष्टुप्छंदः। यज्ञो देवता। वि० पू० ॥ १५ ॥

मंत्रार्थः-(यत्) जिस समय (देवाः) पूर्वोक्त देवताओंने प्रजापतिके प्राण इन्द्रियके अधिष्ठाताओंने (यज्ञम्) मानसयज्ञको (तन्वानाः) विस्तार करतेहुए (पुरुषं) विराट् पुरुषको (पशुम्) पशुरूपसे (अबध्नन्) भावित करके बांधा तब (अस्य) इस संकल्पित यज्ञकी (सप्त) सात गायत्रीआदि छन्द (परिधयः) परिधी (आसन्) हुई ऐष्टिक आहवनीयकी तीन उत्तरवेदीकी तीन आदित्य सातवीं परिधी हुई यह प्रतिनिधिरूप हैं, तथाच श्रुतिः "गुप्त्यै वा अभितः परिधयो भवन्त्यथैतत्सूर्यमेव पुरस्ताद्गोप्तारं करोति" इति "तत एते आदित्यसहिताः सप्त परिधयोत्र सप्त च्छन्दोरूपाः" (त्रिःसप्त) इक्कीस (समिधः) समिधा (कृताः) की अर्थात् १२ महीने पांच ऋतु ३ लोक और यह आदित्य यह इस यज्ञमें काष्ठरूपसे भावित किये गये, अथवा सात क्षीरादि समुद्र यज्ञकी परिधी हुई कारण कि भरतखण्डमें यज्ञ होते हैं और गायत्रीआदि सात, अतिजगतीआदि सात और कृत्यादि सात यह इक्कीस छन्द इसके समिधारूप हुए ॥ १५ ॥

विस्तार-२४ अक्षरका गायत्री ।२८ का उष्णिक् ।३२का अनुष्टुप् । ३६ का बृहती ।४० का पंक्ति ।४४ का त्रिष्टुप् ।४८ का जगती छन्द होता है । इनके तथा और सब छन्दोंके अधिष्ठातृ देवता होते हैं इनकीही मानस यज्ञमें परिधी कल्पना की हैं अङ्गुष्ठप्रमाण मोटी और प्रादेशमात्रलम्बी समिधा होतीहै; देवताओंने मानसयागमें मासऋतुआदिकी कल्पना कीहै इसका भाव यह है कि जो कोई जो कुछ वस्तु देताहै; वह नष्ट नहीं होती किन्तु अधिक होकर फिर दाताके निकट उपस्थित होतीहै; देवताओंने इसको प्रगट कर दियाहै बारह मासको हवनकरनेसे अधिकमाससहित त्रयोदशमास लाभाकिया. पांचऋतु त्यागनेसे वसन्तऋतु छठी लब्ध हुई भूर्भुवः स्वः त्रिलोकी हवन करनसे भूःभुवः स्वः महः जनः तपः सत्य यह सात लोक लाभकिये और इनसे श्रेष्ठ २ लाभ हुए, त्रिलोकीसे ऊपरके सात लोक अतिश्रेष्ठ हैं हवनद्वाराही उनकी गति विदित हुई, इसी प्रकार एक आदित्यसे बारह लाभ हुए। मित्र, अर्यमा, भग, वरुण, अंशु, धाता, विवस्वान्, आदित्य, इन्द्र, पूषा, त्वष्टा, सविता ऋ० २ मंडल २१ सूक्तका प्रथम मंत्र नवम मण्डलका ११३ सूक्त १० मण्डलके १२ सूक्तमें ७ आदित्योंका वर्णन श० ११ । ६ । ३ । ८ में १२ आदित्योंका वर्णन पूर्ण हुआ है । मानस यागसे बाह्य यज्ञोंकी प्रवृत्ति हुई है इससे विदित है प्रथम सब यज्ञ मनमेंही संकल्परूपसे उदित हुए थे, और वे सबही आध्यात्मिक हैं [ऋ० ८ । ४ । १७] ॥ १५ ॥

कण्डिका १६-मंत्र १.

यज्ञेनयज्ञमयजन्तदेवास्तानिधर्म्माणिप्रथमान्यां

सन् ॥ तेहनाकम्महिमानंः सचन्तयत्रपूर्वेसाद्ध्याः सन्तिदेवाः ॥ १६ ॥ [१६]

ऋष्यादि-(१) ॐयज्ञेनेत्यस्य नारायणऋषिः । ब्राह्युष्णिक्छं० । यज्ञो देवता । वि० पू० ॥ १६ ॥

मन्त्रार्थः-(देवाः) सिद्धसंकल्प देवता (यज्ञेन) मानसयज्ञसे (यज्ञम्) यज्ञस्वरूप प्रजापतिको (अयजन्त) पूजन करतेहुए (तानि) वे (धर्म्माणि) यज्ञपुरुषपूजनसम्बन्धी धर्म वा जगद्रूप विकारोंके धारण करनेवाले (प्रथमानि) मुख्य (आसन्) हुए अर्थात् उसके फलसे चिरन्तन धर्म प्रथम हुए । "यहांतक सृष्टिप्रतिपादक सूक्तभाग है । अगला उपासनारूप फलानुवादक भाग कहते हैं" (यत्र) जिस विराट् प्राप्तिरूप स्वर्गमें (पूर्व्वे) पुरातन (साध्याः) विराट उपाधि-साधक देवता (सन्ति) स्थित रहते हैं उस (नाकम्) विराट् प्राप्तिरूप स्वर्गको (ह) ही (ते) वे (महिमानः) उपासक महात्मा (सचन्ते) प्राप्त होते हैं इससे सृष्टिका प्रवाह नित्य दिखाया "सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्" इति ॥ १६ ॥

विस्तार-मानसयागकर्ता देवता सिद्धसंकल्प होते हैं, विराट् पुरुषसे जगतकी सृष्टि हुई है और सब प्रसिद्ध धर्म उनके साथही सृष्ट हुए हैं केवल सृष्ट हुए हैं यही बात नहीं किन्तु इसकी समान कोई भी दूसरा धर्म नहीं है इसीकारण वह प्रथम एक अद्वितीय हुए हैं, जगतकी सृष्टिके साथ २ वर्णधर्मसृष्टि हुई है, जो जगतको धारण करे उसको धर्म कहते हैं, इससे जगतके धारण करनेमें समर्थ पदार्थ जगतकी सृष्टिके संग २ होनेकी आवश्यकता है, अन्यथा सृष्टिलोप होनेकी संभावना होजाय, धर्म जगतको धारण करता है वेद यह कथा स्वयं कहता है, "धर्म्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा लोके धर्मिष्ठं प्रजा उपसर्पन्ति, धर्मेण पापमपनुदति धर्मे सर्वं प्रतिष्ठितम् तस्माद्धर्मं परमं वदन्ति" इति श्रुतेः जगतकी जो प्रतिष्ठा अर्थात् आश्रय है उसको धर्म कहते हैं धर्मिष्ठही सर्व साधारणके उपजीवनस्वरूप हैं प्रजा धर्मात्माके निकट गमन करती है, धर्मसे पाप दूर होते हैं सब कुछ धर्ममें स्थापित हैं इससे धर्मको परम कहते हैं परम अर्थात् उत्कृष्ट कहते हैं तैत्तिरी० आ० प्र० १० इस सूक्तमें धर्मको प्रथम और तैत्तिरीय श्रुतिमें परम शब्द आया है इससे धर्मकी उत्कृष्टतामें सन्देह नहीं. धर्म क्या पदार्थ है यह तैत्तिरीयारण्यकके १० प्र० ६३ अनुवाकमें देखो उसमें सत्य, तप, दम, शम, दान, विधिपूर्वक

सन्तानोत्पादन, गार्हपत्यादि तीन अग्नि, त्रयीविद्या, अग्निहोत्र, यज्ञ, मानसयाग, संन्यास, यह बारह धर्मके अवयव कथन कर इनका फल दिखाया है, अन्तरिक्षके अधिष्ठातृ देवता वायुने पूर्वजन्ममें सत्यधर्मका अनुष्ठान करकै वायुका अधिष्ठातृत्व जगतका धारकत्व प्राप्त किया है, प्रकाशात्मक सूर्यके अधिष्ठातृ देवता आदित्यने तपके प्रभावसे ही जगतका धारकत्व प्राप्तकिया, इत्यादि इससे धर्महो जगतका धारण करनेवाला है.

पुरुषसूक्तकी पर्यालोचनापूर्वक जो देवगणकी समान मानसयाग करै; वह उपासनाके फलसे विराट् पुरुषकी सायुज्य सारूप्य सालोक्यरूपी मुक्तिलाभ करैंगे जो मानसयागकर सृष्टि करते हैं उनको मुक्ति विराट् उपासनासेही प्राप्त हुई है, इसकारण विराट् उपासना करना उचित है। यदि कहो प्रत्येक कल्पमें ब्रह्मलोकनिवासी मुक्त पुरुष कहांसे आता है, इस प्रकरणके निमित्त ऊपरही लिख चुके हैं, कि यह सृष्टिप्रवाह अनादिकालसे चलाआता है इससे विराट् उपासक मुक्त पुरुषोंका अभाव नहीं है विराट्उपासना सब अंगकी करनी इसका विस्तार छां० प्र०५ खं०१२-२४ तक तथा ब्रह्मसूत्र अ० ३ पा० ३ सू० ५७ पर शंकरभाष्य देखो [ऋ० ८। ४। १७]॥ १६ ॥

इति पुरुषसूक्तं सम्पूर्णम्।

अथोत्तरनारायणानुवाकः।

कण्डिका १७-मंत्र १ अनु० २.

अद्भ्यः सम्भृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः सम वर्त्तताग्ग्रे ॥ तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्ग्रे ॥ १७ ॥

ऋष्यादि-(१) ॐअद्भ्यइत्यस्यनारायण ऋषिः। भुरिगार्षीत्रिष्टुप्छन्दः। आदित्योदेवता। सूर्योपस्थाने वि० ॥ १७ ॥

विधिः-(१) पुरुषोंका प्रोक्षणकर और उनको विदा करके आत्मामें मंत्रसे अग्नि आरोपणकर १७-से २२ तक षट् कण्डिकात्मक उत्तर नारायणअनुवाकपाठपूर्वक सूर्यउपस्थान करके वनगमन करै " अद्भ्यः सम्भृत इत्युत्तरनारायणेनादित्यमुपस्थाय " इति [श० १३। ६। २। २०] महीधर कहते हैं अग्नि आत्मामें ग्रहण करते समय मुख फैलाकर अग्निका ताप ग्रहणकरै।

मंत्रार्थः-(पृथिव्यै) पृथिवीआदि सृष्टिके निमित्त अथवा पृथ्वीसे (च) ओर (अद्भ्यः) जलोंसे पृथ्वीके ग्रहण करनेसे पंचभूतका ग्रहण है अर्थात् पंचभूत से जो रस (सम्भृतः) पुष्ट हुआ और (विश्वकर्मणः) जिसका विश्व कर्म है उस कालके (रसात्) प्रीतिका रस (अग्रे) सबसे प्रथम (समवर्तत) होताहुआ, पंचभूत और काल इन सबके प्रति कारण होनेसे पुरुषमेधयाजीके लिङ्ग-शरीरमें पांच भूत और काल तुष्ट होता है, उनके तुष्ट होनेसे कोई रस फलविशेष उत्तम जन्मका देनेवाला उत्पन्न हुआ (तस्य) उस रसको (रूपं) रूप (विदधत्) धारण करताहुआ (त्वष्टा) आदित्य (एति) प्रतिदिन उदय करता है, (अग्रे) प्रथम (मर्तस्य) मनुष्यरूप उस पुरुषमेध-याजीके (आजानम्) सूर्यरूपसे मुख्य (तत्) उस (देवत्वम्) देवत्वको प्राप्त करता है दो प्रकारके देवता होते हैं कर्मदेव और आजानदेव कर्मसे देवत्वको प्राप्त हुए कर्मदेव सृष्टिकी आदिमें उत्पन्न आजानदेव होते हैं, कर्मदेवोंसे सौ-गुणा अधिक आनंद आजानदेवताओंको होता है "ते कर्मदेवेभ्यः श्रेष्ठाः ये शतं कर्मदेवानामानन्दाः स एक आजानदेवानामानन्दः" इति श्रुतेः [बृहदारण्यक ४ । १ । ३९] पुरुषमेधयाजी पूर्वकल्पमें आदित्यरूपको प्राप्त हुआ स्तुति किया है ॥ १७ ॥

विशेष-पृथिवीआदि सृष्टिके निमित्त उसके द्वारा जलसे रस हुआ, वही सब जगत्का उपादानस्वरूप है, उससेही यह समस्त जगत् जो आगे वर्तमान था उसकी सृष्टि हुई,तब इस जगत्के रूपविधानार्थ त्वष्टाकी सृष्टि हुई उन्होंने इस मर्त्य-भुवनमें कर्मदेवत्व प्रगट किया मुक्तपक्षमें पुरुषमेधयाजीके कर्मसे फलरूप रस प्रगट होता है वह कर्म फलका देनेवाला यह सूर्य है, वह पुरुष सूर्यमें गमन कर आदित्य रूपको प्राप्त होजाता है और यही मुक्तिका मार्ग है, सो आगे प्रगट करते हैं॥१७॥

कण्डिका १८-मंत्र १.

वेदाहमेतम्पुरुषम्महान्तमादित्त्यवर्ण्णन्तमसः परस्तात् ॥ तमेव विदित्त्वातिमृत्त्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेयनाय ॥ १८ ॥

ऋष्यादि-(१) ॐवेदाहमित्यस्य नारायणऋषिः । निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । पुरुषो देवता । वि० पू० ॥ १८ ॥

मन्त्रार्थः–(अहम्) मैं (एतम्) इस (महान्तम्) सबसे उत्कृष्ट (आदित्य-वर्णम्) आदित्यरूप और उपमा न होनेसे अपनीही समान (तमसः) अंधकारसे (परस्तात्) परे अंधकाररूपी अविद्यासे दूर (पुरुषम्) पुरुषको (वेद) जान्ताहूं (तम्) उस (एव) ही आदित्यको (विदित्वा) जानकर (मृत्युम्) मृत्युको (अत्येति) आक्रमण करता है अर्थात् परमब्रह्मको प्राप्त होता है (अयनाय) आश्रयके निमित्त (अन्यः) दूसरा (पन्थाः) मार्ग (न) नहीं (विद्यते) है सूर्यमण्डलके अन्तमें आत्मरूप पुरुषकोही जानकर मुक्ति होतीहै ॥ १८ ॥

विशेष–उस कारणरूप सबसे उत्कृष्ट जगदीश्वर आदित्यवर्ण विद्याप्रकाश परमेश्वरके ज्ञानसेही मनुष्यकी मुक्ति होती है यही देवयानमार्ग कहाता है इसके सिवाय मुक्तिका दूसरा माग नहीं है इसीसे आत्मा तदाकार होता है उस समय जो ईश्वरकी महिमा है उसको वह जान्ता है ॥ १८ ॥

कण्डिका १९–मंत्र १.

प्रजापतिश्चरतिगर्भेऽअन्तरजायमानोबहुधाविजायते ॥ तस्ययोनिम्परिपश्यन्तिधीरास्तस्मिन्हतस्थुर्भुवनानिविश्वा ॥ १९ ॥

ऋष्यादि–(१) ॐप्रजापतिरित्यस्य नारायण ऋषिः । भुरिगार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । पुरुषो देवता । वि० पू० ॥ १९ ॥

मन्त्रार्थः–(प्रजापतिः) सर्वात्मा प्रजापति अन्तर्हृदयमें स्थित हुआ, (गर्भे) प्रत्येक गर्भमें (अन्तः) मध्यमें (चरति) प्रविष्ट होता है (अजायमानः) उत्पन्न न होने और नित्य होकर भी (बहुधा) अनेक प्रकार कार्य कारणरूपसे (विजायते) उत्पन्न होता है अर्थात् मायाद्वारा प्रपंचरूपसे उत्पन्न होता है (धीराः) ब्रह्मके ज्ञाता (तस्य) उस प्रजापतिके (योनिम्) स्थान स्वरूपको (परिपश्यन्ति) देखते हैं 'अहं ब्रह्मास्मीति' इस प्रकार जान्ते हैं (विश्वा) सम्पूर्ण (भुवनानि) भूतसमूह प्राणी (तस्मिन्) उस (ह) ही कारणात्मा ब्रह्ममें (तस्थुः) स्थित हैं अर्थात् सम्पूर्ण जगत् तदात्मक है आशय यह की सर्वत्र परमात्मा स्थित है वही सबमें व्याप्त होकर अजन्मा होकरभी अनेकरूप धारण करता है ॥ १९ ॥

कण्डिका २०–मंत्र १.

योदेवेभ्यऽआतपतियोदेवानाम्पुरोहितः ॥ पूर्वोयोदेवेभ्योजातोनमोरुचायब्राह्मये ॥ २० ॥

ऋष्यादि-(१) ॐयोदेवेभ्यआतपतीत्यस्य नारायणऋषिः। आर्ष्यनुष्टुप्छं०। पुरुषो दे०। वि० पू०॥ २०॥

मन्त्रार्थः-(यः) जो आदित्यरूप प्रजापति (देवेभ्यः) देवताओंके निमित्त (आतपति) सब ओरसे प्रकाशित होताहै (यः) जो (देवानाम्) देवताओंका (पुरोहितः) सब कार्यमें अग्रणी है वा प्रथम हितकर तथा पूज्य है (यः) जो (देवेभ्यः) सब देवताओंसे (पूर्वः) प्रथम प्रगट हुआ है उस (रुचाय) दीप्यमान (ब्राह्मये) ब्रह्मके अवयवरूपके निमित्त (नमः) नमस्कार है ॥ २० ॥

विशेषः-जो सूर्यरूपसे सब देवताओंको तपाते जो अग्निरूपसे देवताओंके पुरोहित जो कारणजलसे सबसे पूर्व प्रगट हुए हैं उस ब्राह्मीकान्तिमान्के निमित्त नमस्कार है ॥ २० ॥

कण्डिका २१-मंत्र १.

रुचम्ब्राह्मञ्जनयन्तोदेवाऽअग्ग्रेतदब्रुवन् ॥ यस्त्वैवम्ब्राह्मणोविद्यात्तस्यदेवाऽअसन्वशे ॥ २१ ॥

ऋष्यादि-(१) ॐरुचमित्यस्य नारायणऋषिः। आर्ष्यनुष्टुप्छन्दः। पुरुषो देवता। वि० पू० ॥ २१ ॥

मंत्रार्थः-(देवाः) दीप्तिमान् इन्द्रियोंके देवताओंने (रुचम्) शोभन (ब्राह्मं) ब्रह्मज्योतिरूप आदित्यको (जनयन्तः) प्रगट करतेहुए (अग्रे) प्रथम (तत्) वह वाणी (अब्रुवन्) बोलतेहुए हे आदित्य! (यः) जो (ब्राह्मणः) ब्राह्मण (त्वा) तुमको (एवम्) उक्तप्रकारसे प्रगट हुआ अजरामर (विद्यात्) जानै (तस्य) उस आदित्य उपासनावाले ब्राह्मणके (देवाः) देवता (वशे) वशमें (आसन्) होते हैं ॥ २१ ॥

अथवा-अपने हृदयमें स्वप्रकाश ब्रह्मबोधको प्रगट करके देवत्वको प्राप्त हुए ऋषिगणोंने यही कहा जो इस प्रकारसे ब्रह्मको विचार कर जान्ता है समस्त देवता उसके वशीभूत होजाते हैं, अर्थात् उसकी यथायोग्य उपासनासे हृदयमें प्रकाश प्रगट होता है और जब ब्रह्म ज्योति प्रगट हुई तब उसका ब्रह्ममें अधिष्ठान होनेसे सब देवता उसके वशीभूत होजाते हैं ॥ २१ ॥

कण्डिका २२--मंत्र १.

श्रीश्चतेलक्ष्मीश्चपत्न्यावहोरात्रेपार्श्वेनक्षत्राणि

रूपमुश्विनौव्यात्तम् ॥ इष्णन्निषाणामुम्मंऽइषाण सर्वंलोकम्मंऽइषाण ॥ २२ ॥ [६] ॥ २ ॥

इति श्रीशुक्लयजुःसंहितायामेकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

ऋष्यादि-(१) ॐश्रीश्चतइत्यस्य नारायणऋषिः । निच्यृदार्षी त्रिष्टुप्छं० । पुरुषो देवता । वि० पू० ॥ २२ ॥

मन्त्रार्थः-हे स्वप्रकाशस्वरूप (श्रीः) लक्ष्मी जिसके द्वारा सम्पूर्ण जन आश्रणीय होते हैं (च) और (लक्ष्मीः) जिसके द्वारा देखा जाता है सौन्दर्यरूप लक्ष्मी आपकी (पत्न्यौ) स्त्रीस्थानीय है (च) और (अहोरात्रे) दिनरात (पार्श्वे) पार्श्वस्थानीय है (नक्षत्राणि) आकाशमें स्थित नक्षत्र (रूपम्) आपका रूप हैं कारण कि तुम्हारे ही तेजसे प्रकाशित हैं (अश्विनौ) द्यावा पृथिवी तुम्हारे (व्यात्तम्) मुखस्थानमें व्याप्त हैं "अश्विनौ द्यावापृथिव्यौ इमे हीदꣳसर्वमश्नुवाताम्" इति श्रुतेः । (इष्णन्) कर्मफलकी इच्छा करते (इषाण) इच्छा करो (अमुम्) परलोककी (मे) मेरे निमित्त (इषाण) इच्छा करो अर्थात् मेरे निमित्त परलोक समीचीन हो ऐसी अमोघ इच्छा हो (सर्वं) सब लोकात्मक मैं होजाऊं अर्थात् मुक्त होजाऊं ऐसी (मे) मेरे निमित्त (इषाण) इच्छा करो "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" इति सामश्रुतेः ॥ २२ ॥

सरलार्थः-मनुष्योंको इस प्रकार ब्रह्मबोधलाभ करना चाहिये कि श्री और लक्ष्मी शोभा वा कान्ति और सम्पत्ति यह तुम्हारी पत्नीरूप है दिन रात तुम्हारे दोनों पार्श्वचारी, तुम्हारे रूपसे नक्षत्र रूपवान् है, द्यावापृथ्वी तुम्हारे शरीरके रक्षकरूपसे सावधानतासे तुमको दृष्टिपूर्वक व्याप्तकरके स्थित हैं, यदि तुम इच्छा करो तो यह लोक तो तुम्हारी इच्छानुगत है सब लोकही तुम्हारी इच्छानुगत हैं मुझ उपासकको ब्रह्मप्राप्ति हो मैं सर्वत्र आपको अनुभव करूं यह आदित्यमें ब्रह्म उपासना है ॥ २२ ॥ इति पुरुषमेधः ।

इति श्रीमाध्यन्दिनीयायां वाजसनेयिसꣳहितायां पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृते मिश्रभाष्ये पुरुषमेधप्रकरणे पुरुषसूक्तोत्तरनारायणानुवाकवर्णनं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

शुभमस्तु ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) प्रेस-मुंबई.